त्रैमासिक पत्रिका
ओ३म्
पावमानी
चतुर्थ वर्ष
द्वितीय अंक
येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्र धारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥
सामवेद उत्तरा० १३०२
गुरुकुल प्रभात आश्रम, (टीकरी) भोलाझाल, मेरठ

'स्वाध्यायान्माप्रमद'

पावमानी में विशेषांक के रूप में प्रकाशित

श्रद्धेय स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज के ग्रन्थ रत्न

वैदिक जीवन में 'पञ्च महायज्ञों' की महत्ता को उनकी
मार्मिक व्याख्या द्वारा हृदयङ्गम करने
हेतु पढ़ें :

 पंच यज्ञ प्रकाश

(प्रथम वर्ष का प्रथम अंक)

मूल्य : ६ [illegible]

मानव समाज की सामाजिक व्यवस्था के मूलाधार
दाम्पत्य जीवन को सुखदायी
बनाने में सहायक

(अथर्ववेद के चौदहवें काण्ड का सरल भाष्य)

(प्रथम वर्ष का चतुर्थ अंक)

मूल्य : ६.०० रु०

प्रेरणा स्रोत : प० पू० स्व० श्री स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज

(त्रैमासिक शोध पत्रिका)

चतुर्थ वर्ष द्वितीय अंक, मेष सङ्क्रान्ति, चैत्र २०४६

सम्पादक :
स्वामी विवेकानन्द

प्रकाशक :
स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल प्रभात आश्रम (टीकरी)
भोला, मेरठ (२५०५०१)

अप्रैल-जून १९८९] [मूल्य : ८·०० रुपये

एक प्रति का मूल्य	८·००
वार्षिक सदस्यता शुल्क	३०·००
द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क	५०·००
आजीवन सदस्यता शुल्क	२००·००
आजीवन सदस्यता शुल्क (छात्रों के लिये)	२५०·००
आजीवन सदस्यता शुल्क (संस्था के लिये)	१०००·००
सहयोगी सदस्यता शुल्क	५००·००
संरक्षक सदस्यता शुल्क	११००·००
परामर्शक सदस्यता शुल्क	५५००·००

प्रकाशक, मुद्रक :
स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल प्रभात आश्रम (टीकरी)
भोला, मेरठ–२५०५०१
☎ ५०

चतुर्थ वर्ष, द्वितीय अङ्क
मेष सङ्क्रान्ति, चैत्र २०४६
अप्रैल, मई, जून १९८९

मुद्रणालय :
आर० डी० गोयल प्रिंटिंग प्रेस
पिलोखड़ी मार्ग, मेरठ।
☎ २३५९८

प्रेरणा स्रोत :
पू० स्व० श्री स्वामी समर्पणानन्द जी

सम्पादक :
स्वामी विवेकानन्द

प्रबन्ध सम्पादन :
इन्द्रराज

व्यवस्थापक :
वाचस्पति मिश्र

सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०९०

युगाब्द ५०९०

दयानन्दाब्द १६५

जैसा मैंने देखा

विश्व कल्याण महायज्ञ, (उड़ीसा)

सन् १९८९, ६ फरवरी—उषा की प्रथम किरण का नव सन्देश पाकर दयानन्द के वीर सैनिक जगे और भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के पुनर्वैभव हेतु कृतसंकल्प गुरुकुल प्रभात आश्रम के आचार्य श्री स्वामी विवेकानन्द सरस्वती जी महाराज के नेतृत्व में बड़ाबद से श्री धर्मपालसिंह (मुख्य निरीक्षक—आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र०) श्री लखमीचन्द, श्री सुखराजसिंह खानपुर से श्री सौदान सिंह (जिलाध्यक्ष—आर्य वीर दल), टीकरी से श्री राजेन्द्र शर्मा, सुनैहड़ा से श्री महाशय सूरतसिंह एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती वेदवती, सतवाई से श्री ब्रह्मसिंह तथा उनकी धर्मपत्नी, सागरपुर (दिल्ली) से श्री यज्ञमुनि वानप्रस्थ वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर से श्री भगवत मुनि, मेरठ से श्री शोभाराम प्रेमी, दिल्ली से ही श्री किशनलाल गुप्त, हरयाणा से श्री महाशय धर्मसिंह, हैदराबाद से श्री ब० कृष्णाराव आदि साहसिक जन उड़ीसा के वनप्रान्त के निवासियों के मध्य वेदों की ज्योति जलाने, आर्यत्व की अलख जगाने दिल्ली निजामुद्दीन स्थान (स्टेशन) से लोह पथगामिनी द्वारा प्रस्थान कर दिये। उधर कलकत्ता से श्री विजय दुबे, श्री मोहन दुबे तथा आन्ध्र प्रदेश हैदराबाद से श्री गुण्टी कृष्णाराव, श्री जी० नरसिंहा आर्य ने भी अपने पारिवारिक जनों एवं इष्ट मित्रों के साथ महायज्ञ में सम्मिलित होने के लिये अपनी यात्रा प्रारम्भ की।

यात्रा के प्रारम्भ से ही जहाँ यह क्रान्ति दल यात्रियों के मध्य मन्त्रों एवं गीतों के माध्यम से प्रभु भक्ति एवं राष्ट्रीयता का संचार करता जा रहा था, वहीं प्रतिवादियों के वादों का उन्मूलन कर वैदिक सिद्धान्तों का झण्डा गाड़ क्रान्ति के शङ्खनाद को जन-जन तक पहुँचाने के अपने लक्ष्य में जुटा हुआ था। तो लोह पथगामिनी भी प्रदेशों की संकुचित सीमाओं को पार कर दिल्ली, हरयाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा आदि

प्रान्तों के मनोहर दृश्यों द्वारा यात्रा दल के सदस्यों का मन आह्लादित कर रही थी।

कहीं दूर तक लम्बे हरे-भरे मैदान तो कहीं ऊँचे-ऊँचे कठोर पर्वत कहीं चौड़े पाटों वाली नदियाँ तो कहीं छोटे ताल-तलैया, कहीं निर्जन वन तो कहीं छोटे-छोटे बच्चों की किलकारियों से गुंजायमान जन बस्तियाँ नगर, ग्राम कल-कारखाने सभी कुछ तो दल के औत्सुक्य को बढ़ा ज्ञान वृद्धि कर रहे थे।

यद्यपि **दिनाङ्क ६**—को निजामुद्दीन से १ बजे चलने के उपरान्त **दिनाङ्क ७** को उत्तरार्द्ध ४ बजे गाड़ी ने क्रान्ति दल को झारसुगुडा पहुंचाया, जहाँ पर महायज्ञ के स्वागताध्यक्ष श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती अपने सहयोगियों के साथ श्री स्वामी विवेकानन्द जी सरस्वती तथा उनके अन्य साथियों के स्वागत हेतु पहले से प्रतीक्षारत थे। जिनके द्वारा किये गये हार्दिक स्वागत को अनुभव कर दल के सभी सदस्य यात्रा जन्य क्लान्ति को भूलकर भाव विभोर हो उठे।

वहाँ से सभी लोगों को श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी द्वारा अपने आश्रम लिवा ले जाने का कार्यक्रम था। चूँकि मैं तथा कुछ अन्य दो एक व्यक्ति श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी द्वारा श्री स्वामी विवेकानन्द जी के लिये लायी गयी कार में उनके ही साथ बैठ गये थे। अतः हम लोग शीघ्र ही श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के राष्ट्रीय राजमार्ग ६ पर गौडभगा में उनके द्वारा संस्थापित प्रभुभक्ति आश्रम पहुंच गये जहाँ श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज का "अतिथि देवोभव" की परम्परा को निभाते हुए आश्रमवासियों ने दीपक एवं जलकलश द्वारा पूजन एवं चरण प्रक्षालन करते हुए अभूतपूर्व स्वागत किया। इससे यहीं हमें सर्व प्रथम उड़ीसा की थोड़ी सी झलक मिली। दल के अनन्य सदस्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के सहयोगियों के साथ रात्रि ९॥ बजे प्रभु भक्ति आश्रम पहुंचे। उन्हें विश्व कल्याण महायज्ञ में वितरण हेतु लाये गये सामान, वस्त्र, कम्बल आदि के कारण वहाँ तक बसों से आने में असुविधा तो हुयी ही थी, किन्तु वहाँ पहुंचकर जब सभी सदस्य अपने नित्य नैमित्तिक यज्ञ सन्ध्यादि सभी कर्मों के उपरान्त भोजन हेतु बैठे तो उड़ीसा के पारस्परिक भोजन, जिसमें दाल-भात के अतिरिक्त तीन सब्जियों तथा व्यंजिका (चटनी) का प्रवन्ध तो था ही साथ ही गर्मागर्म शुद्ध देशी घी की पूड़ियाँ भी सभी की क्षुधा को तीव्र से तीव्रतम कर रही थीं को देख सभी का खेद मिट गया और भोजन करते हुए सभी जन उत्कल वासियों की आहार परम्परा की प्रशंसा करने लगे।

रात्रि विश्राम के पश्चात् प्रातः स्नान-ध्यान सन्ध्या यज्ञ आदि सभी नित्य कर्मों से निवृत्त हो आश्रमवासियों द्वारा कराये गये स्वल्पाहार को

कर सभी लोग दो ट्रकरों द्वारा अपने लक्ष्य नूआपाली-कनसिंहा ग्रामों के मध्य स्थित यज्ञस्थली प्रतिभाश्रम की ओर चल पड़े। मार्ग में स्थान-स्थान पर ग्रामवासी जन श्रद्धेय श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज का स्वागत हार्दिक अभिनन्दन अभिव्यक्त कर रहे थे। पहला घेंस महाविद्यालय का था जहाँ सभी के जलपान की भी व्यवस्था अभिनन्दन कर्त्ताओं ने कर रखी थी। जैसे ही गाड़ी विद्यालय के प्राङ्गण में पहुंची महाविद्यालय के प्रधानाचार्य आर्य समाज ग्राम के प्रधान नगर श्रेष्ठि आदि अनेक विशिष्ट व्यक्तियों को हमने पुष्पहार हाथ में लिये प्रतीक्षारत देखा। सभी ने श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज का गला मालाओं से भर दिया, एक अभिनन्दन सभा की संयोजना विद्यालय में की गयी थी। जिसमें सर्वप्रथम प्रधानाचार्य श्री नित्यानन्द जी नायक ने अभिवादन पुष्पहार अभिनन्दन पत्र अंग्रेजी में पढ़ना प्रारम्भ किया कि पूज्य श्री स्वामी जी महाराज ने टोक दिया और कहा कि किसी राष्ट्रीय भाषा में अभिनन्दन पत्र पढ़िये संस्कृत में पढ़िये या फिर उड़िया में ही जिसके भाव तो हम लोग भी समझ सकते हैं। तब श्री प्रधानाचार्य ने अँग्रेजी में पढ़ना छोड़ 'पत्र' को उड़िया भाषा में पढ़ना प्रारम्भ किया। तदन्तर घेंस आर्य समाज के प्रधान जी ने श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज से निवेदन किया कि वे यात्रा के कुछ क्षण ग्राम घेंस में भी चलने की कृपा करें ग्रामवासी श्रीमान् के दर्शनों को अत्यन्त उत्सुक हैं। तब श्री महाराज जी ने स्वीकृति दे दी इसके बाद इधर हम स्वल्प जलपान ग्रहण कर उठे ही थे कि देखा बाहर कीर्तन मण्डली खड़ी है। झाँझ मञ्चीरे, खड़ताल और मृदङ्ग की थाप पर ओम्बोल-ओम्बोल···की धुन स्वर संगीतमय लहरी सङ्घ को हटात् अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। वातावरण इतना भक्तिमय था हम सभी के मुख से भी ओम्बोल की ध्वनि निकलने लगी कीर्तन मण्डली आगे-आगे फिर महाराज जी की गाड़ी फिर दूसरी गाड़ी साथ ही ग्राम के अन्य विशिष्ट जन, मानों धर्मचक्र प्रवर्त्तन हेतु दिग्विजय यात्रा प्रारम्भ हो गयी हो।

तभी ग्राम का प्रवेश मोड़ आया और दूर से ही हर घर के सामने जल कलश और धृत दीप संस्थापित दृष्टिगोचर होने लगे। जैसे ही यह शोभा यात्रा प्रथम गृह के समक्ष पहुंची, तब गृहिणी ने श्री स्वामिवर्य के चरण धोकर सिर पर जल लगाया और श्री महाराज जी पर पुष्प और अक्षत की वर्षा की गृहपति वहीं से हमारे साथ हो लिया। हमने सोचा सम्भवत: यह ग्राम प्रवेश का इनका सांस्कृतिक कृत्य होगा। किन्तु देखते क्या हैं ? प्रति गृह की गृहिणी ने श्री चरणों की अर्चना हेतु आग्रह करना प्रारम्भ कर दिया, हर स्थान पर वाहन को रोकना पड़ता—अन्ततः न चाहते हुए भी श्री महाराज जी किसी की श्रद्धा पर आघात करना नहीं

चाह रहे थे। वाहनों के प्रतिगृह के आगे से सरकते हुए चलते रहने के कारण हमें विलम्ब हो रहा था। आगे चतुष्पथ (चौराहा) दिखायी दिया तो देखते हैं कि चतुर्दिक् हर मार्ग पर प्रतिगृह के आगे वही दृश्य कलश और दीप दिखायी पड़ रहे थे; फिर भी हमें जाना तो एक तरफ ही था तीन दिशाओं की गृहिणी और गृहपति मन मसोसकर ही रह गये होंगे। आगे "घेंस महाविद्यालय" के अध्यापक अपने छात्रों के साथ पंक्तिबद्ध खड़े थे। शोभायात्रा को दूर से ही आता हुआ देखकर उन्होंने जयकारे लगाने प्रारम्भ कर दिये।

श्री स्वामी विवेकानन्द जी की जय, महर्षि दयानन्द की जय, आर्य समाज अमर रहे की ध्वनियों से दिग्दिगन्त गुञ्जायमान हो गया। शोभा यात्रा के निकट पहुँचते ही प्रधानाचार्य ने आगे बढ़कर पुष्पहार से श्री स्वामी जी महाराज का अभिनन्दन किया और सभी अध्यापक शीश नवाकर आशीर्वाद प्राप्त कर रहे थे। तभी हमें ग्राम का निकास मोड़ दिखायी पड़ा। श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज ने कुछ राहत की साँस ली। मोड़ तक आकर श्री स्वामिवर्य ने सभी ग्रामवासियों एवं कीर्तन मण्डली के कीर्तनकारों से लौट जाने का आग्रह किया और वाहन द्रुत गति से आगे बढ़ चले।

हम सभी लोग ग्राम घेंस के इस अविस्मरणीय अभिनन्दन के विषय में सोचते हुए मन ही मन कह रहे थे कि सम्भवतः श्रद्धा का सारा का सारा भाग सृष्टिकर्त्ता विधाता ने इन्हीं के हिस्से में दे दिया है तभी हम उत्तर भारत में इस स्वरूप से वंचित हैं। सभी लोगों के मुख से हठात् यही निकल रहा है कि अद्भुत श्रद्धावान् हैं अभी थोड़ा आगे चले ही थे कि दूर से जनता जनार्दन पुनः एकत्रित दिखाई दी। वाहनों के वहाँ तक पहुंचने पर स्थिति स्पष्ट हुयी कि ग्राम बरिहापाली के लोग कीर्तनमण्डली सहित अभिनन्दनार्थ आये हुए हैं। वाहन रूके ही थे कि पुष्पहार श्रद्धेय श्री महाराज जी को समर्पित कर ग्राम में चलने का साग्रह निवेदन वे लोग करने लगे। 'हमें तो पहले ही पर्याप्त विलम्ब हो चुका है' ऐसा कहकर महाराज श्री ने उनको एतदर्थ मना कर दिया, अतः उन्होंने वहीं अभिनन्दन पत्र पढ़कर महाराज श्री के चरणों में समर्पित कर दिया। वाहनों ने पुनः गति पकड़ी और हम भी सभी दूर-दूर फैली पहाड़ियों को देखते कभी उत्कल वासियों के आस्था विश्वास और कभी परमात्मा के सृष्टि वैचित्र्य को सोचते-विचारते चले जा रहे थे।

प्रतिभाश्रम की ओर····और वह कुछ प्रतीक्षा के बाद वह क्षण भी आ गया जब हम सभी प्रतिभाश्रम की पवित्र भूमि में खड़े थे। श्री महाराज जी के शिष्यों में अनन्य श्री स्वामी सुरेश्वरानन्द तीर्थ वहाँ पर

पहले से विराजमान थे। उनकी ही सामर्थ्य थी कि हमको मध्य के स्वागत कार्यक्रमों में भाग लेने के कारण यहाँ तक पहुंचने में ही पर्याप्त देर हो चुकी थी किन्तु फिर भी वे हजारों की संख्या में उपस्थित जनसमूह को धैर्य बँधाते हुए अपनी वाग्मिता से बाँधे हुए थे। उन्होंने पुष्पहार द्वारा आगवानी करते हुए पारम्परिक द्वार पूजन के कृत्य को कर श्री महाराज जी के दर्शन करने एवं चरण धूलि लेने को व्याकुल जन सम्मर्द को हटा श्रद्धेय श्री महाराज जी को पर्ण निर्मित पुष्प पत्रादि के तोरणादि से सुसज्जित मण्डित यज्ञ-मण्डप पर पहुंचाया। उन्हीं के साथ यज्ञ के संयोजक श्री शैषदेव उस क्षेत्र के सुप्रसिद्ध चिकित्सक श्री मुरारी मिश्र तथा अन्य गणमान्य सम्भ्रान्त क्षेत्रीय नागरिक श्री महाराज जी के पीछे-पीछे जनसमूह को सम्भाले हुए हम सभी को साथ लेकर चल रहे थे। यहाँ यज्ञ मण्डप पर फिर वही दृश्य श्रद्धा और आस्था का हमको देखने को मिला, जो उड़ीसा की अपनी विशिष्ट थाती है। ग्रामीण मातायें मंगल ध्वनि के साथ सजल नेत्रों से श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज के चरण पखार रही थी, आरती उतार रही थी जिनकी श्रद्धा को देख हम लोगों की भी आँखों में आँसू तैर रहे थे। हमको भी उन्होंने अपनी भावनाओं में भावित कर लिया था। ब्राह्मण वर्ग पुरुष सूक्त का पाठ कर रहा था। तभी श्री स्वामी सुरेश्वरानन्द जी तीर्थ ने महाराज का परिचय दिया। "ये ही वे महात्मा जिनकी कृपा दृष्टि से मेरे सहित अनेकानेक छात्र आपके इस क्षेत्र के उस प्राचीन शिक्षा को जिसे कभी व्यास और वशिष्ठ, राम और कृष्ण आदि ने प्राप्त किया था प्राप्त कर अपने को अपने मानव जन्म को धन्य बना पाये हैं। आपका परम सौभाग्य है श्रेष्ठतम पवित्र पुण्यों के सुसंचय का सुफल है जो इन्होंने आज पुनः यहाँ दर्शन दिये, यहाँ की भूमि को पवित्र कर दिया यहाँ के रजःकण सुवासित हो गये। अरे! मानवों हमारे लिये तो यही साक्षात् नारायण हैं, यही हमारे देव हैं। ये इनकी परम कृपा है जो सन् ७७ में मकर सौर-संक्रान्ति पर विश्व शान्ति के हेतु महान् यज्ञ की संरचना भी इन्होंने आपके इसी क्षेत्र में की थी। बारह दिन तक चले उस विशाल महायज्ञ को भला आप में से कौन भूल सकता है और अब पुनः इन्होंने आपके इस क्षेत्र को अपनी कृपा द्वारा पावन करने का निश्चय किया है। इतनी दूर सुदूर उत्तर प्रान्त आकर जो इन्होंने यज्ञ के माध्यम से हमारे उद्धार की चिन्ता की है इसका ऋण हम कैसे उतार पायेंगे?

श्री तीर्थ भावावेश में बोलते चले जा रहे थे। अन्त में उन्होंने श्रदास्पद श्री महाराज से आशीर्वाद की प्रार्थना की और जैसे ही श्री महाराज जी ने मङ्गलाचरण हेतु ओम-कार का शुभारम्भ किया चहुं और पूर्ण शान्ति छा गयी। साँस की ध्वनि भी निरवता को भंग कर रही थी।

मङ्गलाचरण के उपरान्त उन्होंने कहना प्रारम्भ किया कि मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है, अतः इस यज्ञ का आयोजन भी इसी दृष्टि से किया जा रहा है कि सांसारिक कार्यों की व्यस्तता से संत्रस्त मानव कुछ समय विश्रान्तिपूर्वक परमात्मा का भजन कर सके प्रभु के समीप पहुंचने का प्रयास कर सके उसकी गोद में बैठने की चाह जगाकर अपने शुभ्रसंस्कार बना सके। अब आपको किसी कार्य की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं, केवल प्रभु का चिन्तन कीजिये। इन चार दिनों में यहीं रहकर प्रभु का भजन कीजिये—यही उसका प्रसाद मान चारों दिन भोजन भी कीजिये। यही हमारी अभिलाषा है कि हम यहाँ की जनता में ईश्वर के प्रति ललक जगा सकें ऐसी भावना उपजा सकें जिससे सभी लोग सब कुछ परमात्मा का मानकर उसको ही अपने जीवन की डोर सौंप दें और निश्चिन्तता के साथ परम शान्ति का जीवन व्यतीत करें। यही परम कल्याण है और यही एकमात्र विश्व शान्ति एवं विश्व कल्याण का अनन्यतम उपाय है। ओम्शम के साथ श्री महाराज जी के आशीर्वचनों का समापन हुआ ही था कि चहुं ओर माताओं द्वारा मङ्गल ध्वनि और श्रद्धालु सज्जनों द्वारा भी महाराज जी की जय-जयकार करना प्रारम्भ हो गया। किसी प्रकार से उनको श्री तीर्थ ने शान्त किया। वैसे तो उड़ीसा की सामान्य जनता भी हिन्दी बोलने पर भावों को हृदयङ्गम कर लेती है। फिर भी औपचारिक दृष्टिकोण से श्री स्वामी सुरेश्वरानन्द जी तीर्थ उड़िया अनुवाद कर जनता को श्रद्धेय श्री महाराज जी की भावनाओं से पूरा अवगत करा दिया।

आज का अभिनन्दन कार्यक्रम यहीं समाप्त हुआ जिसके बाद जनता जनार्दन को भोग लगाया जा रहा था। श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज के लिये यज्ञ मण्डप से दूर निर्जन एकान्त में लघु सरिता के निकट कुटिया का निर्माण पहले से ही ग्रामवासियों ने कर रखा था। श्री महाराज जी ने उसमें ही विश्रान्ति ली। हम लोगों की व्यवस्था श्री डा० मुरारि मिश्र के सर्वसाधन सम्पन्न निवास पर ही थी। अतः वहीं पर सबने रात्रि विश्राम किया।

दिनाङ्क १२—प्रातः डा० मुरारि मिश्र के घर से जलपान कर सब लोग यज्ञ मण्डप पर पहुंचे तब तक श्री स्वामी जी महाराज अपने ब्रह्मा के आसन पर विराजमान हो चुके थे, श्री स्वामी सुरेश्वरानन्द तीर्थ सहित वेदपाठी ब्रह्मचारी गण उद्गाताओं के लिये बिछाये गये आसनों पर आसीन हो गये। चारों ओर यज्ञ मण्डप में चौदह विप्रगण ऋत्विग् के रूप में बैठाये गये थे। प्रारम्भिक यज्ञ घोषणा समाप्त हुई और जैसे ही घड़ी ने साढ़े सात बजाये यज्ञ प्रारम्भ कर दिया गया। साढ़े दस बजे तक विश्व कल्याण महायज्ञ का कार्यक्रम था जो कि श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज

के यज्ञ व्याख्यान एवं श्री स्वामी सुरेश्वरानन्द तीर्थ द्वारा उसके उड़िया अनुवाद के साथ समाप्त हो गया जिसमें श्री महाराज जी ने कहा कि बिना वेद ज्ञान के हिन्दू जाति का उद्धार नहीं हो सकता जिस तरह कथाओं में हम श्री हनुमान जी के रोम-रोम में श्री राम के बसे होने की चर्चा सुनते हैं उसी तरह हमारे रोम-रोम में वेद रम जाने चाहिये। हम गायें तो वेदों के माध्यम से, रोयें तो वेदों के माध्यम से, कुछ भी क्रिया करें किसी भी तरह वेद हमसे वियुक्त न होने पायें यही युगप्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द की अभिलाषा थी और इसी में विश्व का कल्याण निहित है। इसके बाद श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज के द्वारा ध्वजोत्तोलन का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ जिसके तुरन्त बाद श्री स्वामी जी की अध्यक्षता में उद्घाटन समारोह प्रारम्भ होना था इसमें सर्वप्रथम महायज्ञ समिति की ओर से स्वागताध्यक्ष श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती ने मार्मिक शब्दों में सभी का स्वागत किया तदनन्तर समारोह के अध्यक्ष प०.पू० मा० श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज ने उड़ीसा की प्राचीन एवं अर्वाचीन विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उड़ीसावासियों की धार्मिकता की चर्चा की। उन्होंने राजा खारवेल द्वारा वृष्टि यज्ञ कराने का वर्णन करते हुए कहा कि उड़ीसा की पुण्य भूमि ने पूर्व काल से लेकर अब तक ऐसी सन्तति उत्पन्न की जिसने अपनी चरित्रनिष्ठा एवं तेज के कारण सदैव भारत माता का मस्तक ऊँचा किया। स्वतन्त्रता के उपरान्त उड़ीसा के प्रथम मुख्यमन्त्री श्री नवल किशोर चौधरी जैसा मुख्यमन्त्री सारे भारतवर्ष में ढूँढे नहीं मिलता जिन्होंने मुख्यमन्त्री पद से त्याग पत्र केवल इसलिये ही दिया कि राजनीति में रहकर वे समाज की यथेष्ट सेवा नहीं कर पा रहे हैं। इस भूमि में जन्म लेकर आप सभी लोग धन्य हो गये। १२ बज चुके थे अब विश्वभृत भण्डारे का शुभारम्भ होना था अतः अग्रिम कार्यक्रम की घोषणा के साथ शान्ति पाठ कर दिया गया। अभी तक भण्डारा समाप्त नहीं हुआ था कि दो बज गये धर्म महा सम्मेलन होना था तब तब यह निर्णय लिया गया कि भण्डारा तो सांयकाल तक ऐसे ही चलने दिया जाये और सम्मेलन भी अपने समय पर चलते रहेंगे अतः अध्यक्ष पद पर पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के मनोनयन के साथ संयोजक श्री वृहस्पति शास्त्री (स्नातक गुरुकुल प्रभात आश्रम) ने सम्मेलन प्रारम्भ होने की घोषणा की। सर्वप्रथम उन्होंने सम्मेलन के उद्घाटन के लिये श्री स्वामी सुरेश्वरानन्द जी से आग्रह किया। उनके व्याख्यान के पश्चात् मुख्य वक्ता श्री कपिल मु न जी सहित वलाँगीर के राजकीय अधिवक्ता श्री प्रफुल्ल कुमार वोहीदार, श्री सत्यवादी दाश प्रधान घेंस, उड़ीसा में आर्य समाज के प्रचारक श्री रणजीत आर्य, श्री राधेश्याम बारीक, एवं उत्तर प्रदेश सभा के मुख्य निरीक्षण श्री धर्मपाल

आर्य, श्री शेषदेव जी नायक नुआंपाली, आदि अनेक वक्ताओं ने 'मानव धर्म की विवेचना' विषय पर अपने विचार रखे। इतने में यज्ञ का समय साढ़े चार बज चुके थे। अतः सम्मेलन की समाप्ति की घोषणा कर दी गयी।

श्री श्रद्धेय स्वामी जी महाराज यज्ञ मण्डप पर पधार रहे थे। उनके दर्शनों को लालायित उमड़ते जनसमूह को देखकर श्री महाराज जी का यज्ञ मण्डप तक आना एक समस्या प्रतीत हो रहा था। किसी तरह व्यवस्थापकों ने जनता को हटाते हुए पूज्य श्री के यज्ञ मण्डप तक पहुंचने की व्यवस्था की। साढ़े पाँच बजे तक महाराज जी के ब्रह्मत्व में विश्व कल्याण महायज्ञ का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और महायज्ञ के बाद से रात्रि ९-१० बजे तक उड़ीसा की सांस्कृतिक धरोहर प्रभु कीर्तन विभिन्न कीर्तन मण्डलियों द्वारा किया जाता रहा। इसी तरह **दिनाङ्क** १०-११ को भी प्रातः ७·३०-११·३० बजे तक सांय ४·३०-५·३० बजे तक पूज्य ब्रह्माजी के निर्देशन में यज्ञ का कार्यक्रम सम्पन्न होता रहा। दिनांक १० को पूर्वान्ह में श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज की ही अध्यक्षता में 'जीवन में पूर्णता हेतु योग की आवश्यकता के विषय पर योग महा सम्मेलन का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ जिसके संयोजक श्री शिव शंकर जी शास्त्री (स्नातक-गुरुकुल प्रभात आश्रम) तथा मुख्यवक्त श्री स्वामी सुरेश्वरानन्द तीर्थ एवं अन्य वक्ता श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती, श्री गंगाधर गुरु राजकीय अधिवक्ता पद्मपुर, श्री सोमदेव शतांशु दर्शननिष्पात (स्नातक-गुरुकुल प्रभात आश्रम) श्री वेहरा गुरु धानामाल, श्री अमृत साहू घेंस आदि थे। अपरान्ह में 'विश्व शान्ति के लिये वेद का दृष्टिकोण' विषय पर वेद महा सम्मेलन श्री गंगाबर गुरु की अध्यक्षता में श्री स्वामी विश्वमित्रानन्द जी परिव्राजक के उद्घाटन भाषण के साथ, संयोजक श्री सोमदेव शतांशु ने प्रारम्भ कराया। आज के मुख्य वक्ता उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान व गुरुकुल के मन्त्री श्री पं० इन्द्राज जी थे तथा मैंने भी इस सम्मेलन मैं अपने विचार रखे। **दिनांक ११ शनिवार** को पूर्वान्ह में वाद-विवाद तथा भाषण प्रतियोगिताओं का श्री नित्यानन्द जी नायक (प्राचार्य घैंस महाविद्यालय) की अध्यक्षता में समायोजन किया गया।

संयोजन श्री वाञ्छानिधि नायक कर रहे थे उनकी सहायता के लिये श्री वेदप्रकाश शास्त्री (स्नातक गुरुकुल प्रभाताश्रम) ने सहायक संयोजक का पद भार संभाल रखा था। 'भारत के नवनिर्माण छात्रों का योगदान' विषय पर केवल नवम व दशम श्रेणी के छात्र भाग ले सकते थे। विभिन्न विद्यालयों के २१ प्रतियोगियों द्वारा इस प्रतियोगिता में भाग लिया गया। एतदुपरान्त संयोजित वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय

'भारत में धर्मनिरपेक्षता की उपादेयता' था। इस प्रतियोगिता में ८ महा विद्यालयों के १६ प्रतिनिधियों ने सोत्साह भाग लेकर कार्यक्रम को सफल बनाया। प्रतियोगियों की अधिकता के कारण आज का अग्रिम कार्यक्रम 'नवयुवक सम्मेलन' कुछ विलम्ब से प्रारम्भ हो सका। इधर विश्वभृत भण्डारे में सतत् भोजन वितरण चलता रहा। प्रतिभाश्रम के परिसर में किसी मेले जैसा दृश्य उपस्थित हो रहा था। आये हुए सभी लोगों के भोजन की व्यवस्था विश्वभृत् भण्डारे में की गयी थी। मध्य में टूटती हुई भोजन व्यवस्था को भोजन के संयोजक तथा वितरक लोग संभाल रहे थे। सांय ४-५ बजे तक जाकर कहीं, भोजन परोसने वालों को कुछ राहत मिल पाती थी, उधर मंच पर श्री कपिल मुनि जी की अध्यक्षता में 'आधुनिक भारत के नव-निर्माण में भारतीय नवयुवकों का कर्त्तव्य' विषय पर आयोझित नबयुवक सम्मेलन का श्री स्वामी सुरेश्वरानन्द जी तीर्थ द्वारा संयोजन चल रहा था। समारोह का उद्घाटन श्री पं० इन्द्रराज जी के व्याख्यान से हुआ। आज के इस समारोह के मुख्य अतिथि श्री डा० मुरारी मिश्र कर्नसिंहा तथा मुख्यवक्ता पं० जयन्त पाण्डेय 'आर्य पुत्र' महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश, इस समारोह के अन्य वक्ताओं में श्री प्रेमप्रकाश शास्त्री, श्री धीरेन्द्र कुमार शास्त्री, श्री सन्तोष कुमार शास्त्री, श्री वागीश्वर शास्त्री तथा श्री वाचस्पति शास्त्री आदि गुरुकुल के स्नातकों का नाम उल्लेखनीय है। सम्मेलन के पश्चात् गुरुकुल प्रभात के ब्रह्मचारी कौस्तुभ द्वारा बल प्रदर्शन का रोमांचकारी कार्यक्रम हुआ। जिसमें ब्रह्मचारी आँखों एवं कानों से भाले लगे सरिये को मोड़, हाथों से काँच पीस, छाती पर पत्थर तुड़वा, कमर से लोहे की जंजीर तोड़ ब्रह्मचर्य एवं प्राणायाम का महत्व अभ्यागत जनता के समक्ष रखा। आज के यज्ञ कार्यक्रम के पश्चात् पूर्व दिनों की तरह कीर्तन का कार्यक्रम तो रखा ही गया था। किन्तु आज का सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र उड़ीसा की अपनी नाट्य परम्पराओं की विशेषता का द्योतक 'पाला' था। बहुत बड़ी संख्या में जनता ने आकर अपनी जगह पंडाल में पहले से ही बना ली थी, तभी पाँच व्यक्तियों के एक दल ने आकर महाभारत एवं रामायण के विभिन्न प्रसंगों का अभिनय प्रारम्भ किया, इसमें संवादों की अपेक्षा गायन को अधिक प्रमुखता दी जा रही थी, मध्य में प्रसंगवश प्रभुभक्ति के गीत कीर्तन की तरह भाव-विभोर होकर अभिमंचित किये जा रहे थे। लगभग दो बजे तक, जब तक कि इसका समापन नहीं हुआ ग्रामीण जनता ने रुचिपूर्वक इसका आनन्द लिया।

दिनांक १२ फरवरी रविवार का दिन प्रातः काल से ही उत्साह व उल्लास का दिन था, इस दिन का रविवारीय अवकाश होने के कारण

ग्रामीण अंचल व नगर के वे सभी श्रद्धालुजन प्रतीक्षा कर रहे थे, जो विभिन्न शिक्षा संस्थानों अथवा सरकारी उद्यमों में कार्यरत होने के कारण अब तक विश्व कल्याण महायज्ञ के पूर्वाह्न के कार्यक्रमों में सम्मिलित नहीं होने पाये थे। ठीक समय यज्ञ प्रारम्भ हुआ। आज के यज्ञ प्रवचनों में श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज ने यज्ञ के महत्व के साथ-साथ उड़ीसा प्रान्त की धार्मिकता तथा बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की उन्होंने कहा कि यह उड़ीसा भूमि की ही देन है कि उसके ही एक सुपुत्र है उपेन्द्र भञ्ज जिन्होंने विश्व के सबसे अद्‌भुत काव्य 'वैदही विलास' की रचना की जिसके हरेक पद्य का प्रत्येक चरण व कार से ही प्रारम्भ होता है और सारी पुराणों, रामायण, महाभारत का पद्यानुवाद (जो हिन्दी में भी नहीं) उड़िया भाषा में उपलब्ध होता है। ये सब किसका प्रताप है ? यहाँ जनता पर सरस्वती के प्रति निष्ठा के फलस्वरूप प्रभु का पुण्य आशीर्वाद प्रतीत होता है।

आज पूर्णाहुति थी अतः अन्य तीनों दिनों के यजमान सपत्नीक वेदि के चारों ओर विराजमान थे। आश्रम परिसर में चारों ओर कुम्भ जैसा दृश्य उपस्थित हो रहा था।

चारों तरफ से जनसमूह यज्ञ मण्डप में प्रवेश करना चाह रहा था किन्तु सुरक्षा की दृष्टि वंश परम्परा (वल्लियाँ) लगा दी गयी थीं। अतः अनेकानेक श्रद्धामयी देवियाँ व धार्मिक जन वहीं से ही पूर्णाहुति हेतु अपनी लायी हुई सामग्री, घी, नारियल आदि पकड़ा रहे थे। जिनके द्वारा पूर्णाहुति के बाद विशिष्ट व्यक्तियों के प्रवचनों के साथ यज्ञ मण्डप का कार्यक्रम समाप्त हुआ। एतदनन्तर विश्वभृत् भण्डारा प्रारम्भ हुआ लाखों लोगों ने निमन्त्रण स्वीकार कर भण्डारे में प्रसाद पाया। अपराह्न में आज श्री महाराज जी द्वारा दरिद्र नारायण की सेवा में वस्त्र, कम्बल, पात्रादि का वितरण किया गया और आज के इस कार्यक्रम के साथ ही विश्व कल्याण महायज्ञ के समारोह का समापन सांय ६ बजे विधिवत् कर दिया गया।

दिनांक १३ को प्रातः ५ बजे ही श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज के साथ हम लोग उड़ीसा के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान (प्रतिभाश्रम से थोड़ी दूरी पर स्थित) नृसिंहनाथ (पाइगमाल) गये। डा० मुरारि मिश्र ने अपने वाहन की व्यवस्था कर रखी थी, जिसे वह स्वयं चला रहे थे। वहाँ पहुंच कर हम सभी ने पहाड़ियों के ऊपर से गिरते निर्झर झरने में स्नान किया। श्रद्धेय श्री महाराज जी ने मन्दिर से प्रसाद लेकर उसे बन्दरों एवं भिक्षकों में बाँटा और हम सभी पुनः स्वस्थान की ओर चल पड़े। कर्नसिहा में आकर डाक्टर सहाव द्वारा संचालित सत्य सेवा उत्तर माध्यमिक विद्यालय का श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज द्वारा निरीक्षण किया गया और प्रातः ८ बजे हम लोग अपनी-अपनी वस्तुओं का संचयन कर उन्हें बाँधने की सज्जा कर

रहे थे। मध्याह्न भोजनादि से निवृत्त हो पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सांय ३॥ बजे हमें एक्सप्रेस रात्रि बस सेवा में बैठ भुवनेश्वर पहुंचना था अगले दिन १४ को भुवनेश्वर तथा जगन्नाथपुरी के पर्यटन का कार्यक्रम था और दिनांक १४ की प्रातः लगभग ५॥ बजे हमारी बस यात्रा भुवनेश्वर आकर समाप्त हो गयी। वहाँ हम सभी के विश्राम की व्यवस्था आर्य समाज भुवनेश्वर में की गयी थी। यही अपने सभी नित्य-नैमित्तिक कृत्यों से निवृत हो हम लोग दो वाहनों द्वारा पुरी, कोणार्क आदि की यात्रा पर चल पड़े। पुरी में भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में पहुँच प्रभु का स्मरण किया तदनन्तर समुद्र दर्शन को चल पड़े। समुद्र पर पहुँच कर हमने देखा कि विशाल जन समूह उसमें स्नान कर रहा है। हमने भी स्नानेच्छु होकर सोचा कि चलो समुद्र की विशालता को हृदय में धारण किया जाये, सामने दूर तक जल ही जल दृग्गोचर हो रहा था उसमें नहाने का आनन्द ही कुछ और था लहरें झूला सा झूला रही थीं, समय का पता ही नहीं चला कि एकाएक ध्यान आया कि अभी तो अन्य स्थलों के भी दर्शन करने हैं। तैयार हो हम लोग विश्वदाय स्मारक कोणार्क के सूर्य मन्दिर की ओर चल पड़े। चलते-चलते सड़क के किनारे वृक्षों के झुरमुटों के पार लहलहाता समुद्र पुनः दिखायी दिया तभी चालक ने बताया कि मन्दिर आने ही बाला है। थोड़ी देर बाद मन्दिर को आया देख हम सभी का मन प्रफुल्लित हो गया। मन्दिर को देख प्राचीन भारत के विलुप्त वैभव का हटात् स्मरण हो आया। रथ की आकृति में ध्वंसावशेष मन्दिर भारतीय कला शिल्पियों के शिल्प चातुर्य की साक्षी दे रहा था। वहाँ से चलकर हम लोग भुवनेश्वर के पास अशोक द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करने स्मृति चिन्ह धौला स्मारक पहुँचे, यह बुद्ध मन्दिर वहाँ की पहाड़ी के सर्वोच्च शिखर पर अवस्थित है। वहाँ का शान्त वातावरण सभी के मनों को अद्भुत शान्ति प्रदान कर रहा था। मन्दिर से सुदूर विस्तृत हरे-भरे खेतों के मध्य प्रवाहमान 'खूनी नदी' कलिंगराज के शौर्य को स्मरण करा रही थी जिसके तट पर भारत सम्राट अशोक महान् जीतकर भी हार मान चुका था मन्दिर के सौन्दर्य एवं शान्तिमय वातावरण को अनिच्छा से ही छोड़ कर हम प्राचीन मन्दिर श्री लिंगराज के दर्शन को चल पड़े और वहाँ मन्दिर के दर्शनोपरान्त पुनः स्वविश्राम स्थली आर्य समाज मन्दिर भुवनेश्वर आ गये। वहाँ रात्रि विश्राम के पश्चात् **दिनांक १५** को हम यज्ञ आदि से निवृत्त हुए ही थे कि प्रातः सात बजे श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार फुलवाणी जिले में ले जाने हेतु जहाँ फैले सर्व-साधन सम्पन्न ईसाई मिशनरियों के विरुद्ध किये जा रहे संघर्ष की रूपरूपे का अवलोकन वे अतिथियों को कराना चाहते थे अतः श्री स्वामी

विवेकानन्द जी महाराज को ले जाने के लिये एक जीप लेकर पहुँच गये यहाँ से चलकर मध्य में हमने एक स्थान पर स्वल्पाहार ग्रहण किया और प्रायः साढ़े बारह बजे हम श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती द्वारा 'तनरड़ा' में संस्थापित कन्या गुरुकुल पहुँचे। वहाँ गुरुकुल के द्वार पर सभी कन्यायें हाथों में पुष्प लिए सैन्यबद्ध तरीके से श्रद्धेय श्री महराज जी की अगवानी हेतु प्रतीक्षारत खड़ी थी। जैसे ही हम लोग उनके समक्ष पहुँचे उन्होंने संस्कृत गीतिका द्वारा सभी आगन्तुकों का स्वागत किया। एतदनन्तर हमने हाथ पैर धोंये ही थे कि सेवक भोजनार्थ ले चलने को आ गया। गुरुकुल भोजनालय में प्रधानाध्यापिका जी हमारे भोजन की व्यवस्था में लगी हुई थी। १२ प्रकार के विविध स्वादिष्ट व्यंजनों से तृप्त हो हमने एतदर्थ उठाये गये कष्टों के लिये उनसे कृतज्ञता ज्ञापित की और स्वल्प विश्राम के पश्चात पुनः आगे चल पड़े, वही मार्ग में श्री स्वामी जी ने स्वसंस्थापित एक अनाथ कन्या गुरुकुल तभी श्रीवच्छ पण्डा हाईस्कूल को दिखाने के उपरान्त उन्होंने गन्त्री चालक को तीव्रता का निर्देश दिया। कुछ देर बाद एक सुविस्तृत तालाब देख हम सभी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ तभी श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने हमें बताया कि 'गञ्जाम' का यहतालाब इस सारे नगर पेय जल व्यवस्था का एक मात्र स्रोत है। चलते-चलते ही उड़ीसा के महाकवि 'भञ्ज' की पुण्य भूमि 'भञ्ज नगर' के दर्शन भी हमें हुए। आगे कलिंगा घाटी के आने पर सूर्य के आतप से संत्रस्त हम लोगों को कुछ राहत मिली। पर्वत पर बने रास्तों पर ऊपर ही ऊपर चढ़ती गाड़ी से नीचे घाटी का दृश्य अत्यन्त मनमोहक लग रहा था। घाटी की हरयाली ने वातावरण को शीतल एवं सुखद बना रखा था। अतः उसके अतीत होने पर पुनः कुछ उष्णता अनुभव होने लगी, फिर सांयकाल हो चला था भगवान भास्कर फैलाये हुए अपने किरणों के जाल को समेटना चाह रहे थे' उमस समाप्त हो चुकी लगभग ५ बजें होंगे जब हम 'चाचेडी' उतरे जहाँ पहुँचते ही श्रद्धेय श्री महाराज जी का भव्य भावमय स्वागत हुआ जिसके बाद मृङ्ग और मञ्जीरे की ध्वनियों के बीच हम सभी को श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के आश्रम तपोवन शान्ति ले जाया गया। इस आश्रम हेतु उड़ीसा सरकार ने ५० एकड़ भूमि श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज को अनुदान में प्रदान की है। वहाँ आश्रम में एक छोटी सी सभा का समायोजन किया गया था। जिसमें निकटवर्ती गामीणाञ्चलीय जनता पर्याप्त संख्या में श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज से आशीर्वाद लेने आयी हुई थी। सर्वप्रथम श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने सभी का परिचय देते हुए अपने मार्मिक उद्गारों में कहा कि मैंने कभी भी जीवन के संघर्षों में अब तक हार नहीं मानी, किन्तु अब शरीर हार मान

रहा है, मन मेरा जर्जरित भले ही न हुआ हो शरीर को तो काल के प्रहार से जर्जरित होना ही था अतः मैं श्रद्धेय श्री स्वामी से आग्रह करूंगा कि मेरे विनम्र निवेदन को स्वीकार करते हुए मेरे बाद भी यह संघर्ष चलता रहे इसकी व्यवस्था करने की कृपा करें मैं अपनी सारी संस्थायें आपको सौंपता हूं कि आप अपने शिष्यों को भेजकर इनकी सुनिश्चित व्यवस्था अपने हाथों में ले लें। इनका उद्धार आप ही कर सकते हैं। साथ श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने श्री महाराज जी से सभी को आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। तब श्रद्धेय श्री महाराज जी ने अपने आशीर्वचन में हिन्दू जाति के अब तक जीवित होने के रहस्य को उद्घाटित करते हुए कहा कि चाहे कितनी भी संकटापन्न परिस्थितियाँ रही हों चूंकि हमारे पूर्वजों ने धर्म का आश्रय कभी नहीं छोड़ा अतएव विश्व की सभी प्राचीन सभ्यता मिट चुकी हैं किन्तु सबसे ने प्राचीनतम होते हुए भी हिन्दू सभ्यता अब भी पृथ्वी पर फल फूल रही है। उन्होंने ईसाइयों के चंगुल में न आने वाली हिन्दू जनता को जो ईसाई नहीं बनायी जा सकी, अतः सभी तरह से मिशनरियों द्वारा प्रताड़ित की जाती रही है। अपना धर्म न छोड़ने के लिये धन्यवाद देते हुए कहा कि राजा मानसिंह को कोई नहीं पूछता जबकि जंगलों की खाक छानने वाले महाराणा प्रताप का स्मरण ही पुण्य प्रदायक माना जाता है क्यों? केवल इसलिये तो कि उन्होंने दूसरों का धर्म एवं दूसरों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। आप लोग अपने धर्मव्रत में दृढ़ रहे परमात्मा कभी न कभी परीक्षा की इस भयंकर स्थिति को समाप्त कर उसमें सफल रहे मनुष्यों को अवश्य अभ्युदय प्रदान करेगा। वह क्षण शीघ्र ही आवें यही मेरी उस परम पिता परमात्मा दयामय प्रभु से प्रार्थना है।

इसके बाद श्रद्धेय श्री स्वामी जी के प्रवचन का सार श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी द्वारा उड़िया में अनुदित कर स्थानीय जनता को अवगत कराया गया। तदोपरान्त श्री महाराज जी ने वहाँ जनता में वस्त्रों का वितरण किया जिसके बाद शान्ति पाठ पुरस्सर सभा का विसर्जन कर दिया गया तब तक भगवान भास्कर अनुचर चन्द्रमा को अपना कार्य भार सौंप कर गगन मण्डल से विदा ले चुके थे। वहाँ पास की ही पहाड़ी से प्रवाहमान एक छोटी जल धारा पर हमने अपने नित्य के कृत्यों का अवसान किया। संध्या भजन से निवृत्त होकर हम विश्राम स्थल से बाहर आये ही थे, कि श्री स्वामिवर्य्य के दर्शनार्थ उत्सुक बहुत बड़ी जनसंख्या को हमने वहाँ बैठे देखा। पता करने पर ज्ञात हुआ कि निकटवर्ती ग्रामों की संभ्रात जनता हेतु एक रात्रि सभा का पुनः आयोजन किया गया था जिसमें श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज का आध्यात्मिक प्रवचन बड़े मनोयोग

से सुना गया। रात्रि भोजन के पश्चात् हम सभी अपने-अपने विस्तरों पर लेट चुके थे। मेरे मन में रह-रह कर यात्रा में देखे हुए दृश्यों की याद आ रही थी। कुछ दृश्य मस्तिष्क में बार-बार घूम कर दिल को कचोट रहे थे, पाठकों से मैंने अब तक सबसे चिन्ताजनक पहलू छिपाये रखा है अब वही पहलू मुझे सर्वाधिक व्याकुल किये हुए था। फुलवानी जिले में प्रवेश करते ही ईसाइयों द्वारा वहाँ की भोली भाली जनता को धर्म परिवर्तन के लिये फुसलाने हेतु किये जा रहे षड्यन्त्रों का आभास हमें होने लगा था। किसी ग्राम में हम मन्दिर तो चाह कर भी न देख पाये, हाँ! ईसाइयों के दोनों समुदायों कैथोलिक एवं प्रोस्टेडों के गिरजाघर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर ही दीखने प्रारम्भ हो गये थे। राइकिया-कस्बे में तो ईसाइयों द्वारा संस्थापित संस्थानों की भरमार थी। कहीं चिकित्सालय तो कहीं विद्यालय भारतीय जनता रूपी पक्षी को लुभाने के लिये तरह-तरह के पिंजड़ों का निर्माण किया गया साम-दाम, दण्ड, भेद सभी उपायों का कुशलता से प्रयोग करते हुए मिशनरी लोग यहाँ की जनता को ईसाई बना रहे हैं। कभी धन का लोभ, तो कभी उत्पीड़न, जिस तरह उनकी बात बने उसी तरह बना रहे हैं। श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती ने हमें मार्ग में बताया था कि उनके आश्रम से ५० कि० मी० आगे एक ग्राम में ईसाइयों ने अल्पसंख्यक हिन्दुओं के घरों को ही जला डाला था उनकी इन ज्यादतियों का एक उदाहरण तो हमने स्वयं प्रत्यक्ष देखा था। राइकिया कस्बे में ही ईसाई नवयुवक समूह यज्ञशाला परिसर में ही जूते पहन कर बालीवाल खेल रहे थे। गेंद का यज्ञ मन्दिर में पहुँचना और उनका जूते पहने ही उसको उठाने मन्दिर के अन्दर जाना सम्भवतः यही उनको मिली महात्मा ईसा की प्रेम की शिक्षा का अनोखा प्रदर्शन हो। हिन्दू तो बेचारे अधि-संख्यक हो या अल्पसंख्यक मूक दर्शक बने रहना ही उनकी नियति है।

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी इसीलिये ही कह रहे थे कि सुविधा सम्पन्न क्षेत्र में धर्म प्रचार की डींग मारना कोई कठिन नहीं है असली धर्म प्रचार तो इस साधनहीन पर्वतीय क्षेत्र में करने का है जहाँ हम कर नहीं पा रहे हैं तभी विधर्मी को अवसर मिल पाता है विधर्म को बढ़ावा देने का अपनी स्वार्थ सिद्धि कर समाज को एवं राष्ट्र को हानि पहुँचाने का। हाँ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यकर्त्ता हैं जो इस ओर भी ध्यान दे रहे हैं। विषम परिस्थितियों में उनसे ही मुझे सहायता मिल पाती है कुछ अपने लोग भी हैं जो या तो धर्म प्रचार का मिथ्या बवंडर से अपनी एषणाओं की पूर्ति करते हैं उससे स्वयं बचने पर मेरी टांग खींचने में ही अपने को कृतार्थ मान रहे हैं। श्री स्वामी जी की वाणी में एक टीस थी जो रह-रह कर अब भी मेरे मर्मों में चुभ रही थी। मैं सोच रहा था कैसे होगा हमारा उद्धार

प्रभो ! आप हमारे दुर्गुणों को दूर कर, क्यों नहीं सद्गुणों से हमें युक्त करते ? जिन कारणों से हम वर्षों पराधीन रहे ! उन कारणों का हम अभी तक निवारण क्यों नहीं कर पा रहे ? इसी व्याकुलता में न जाने कब निद्रा देवी ने मुझे अपनी गोद में ले लिया, कुछ पता न चला। प्रातः पक्षियों के कलरव को सुन मैं उठ बैठा, बाहर आकर देखा तो सारा दृश्य किसी सिद्ध चित्रकार की तूलिका से चित्रित सा दीख पड़ रहा था। ऊँची पहाड़ियों, हरे-हरे वृक्षों के रंग-विरंगे परिधानों से सजी सँवरी पृथ्वी, आकाश में उड़ते रंग-बिरंगे पक्षी, पूर्व दिशा में फैली लालिमा प्रकृति की इस प्रातःकालीन अवर्णनीय छटा को देख किसका मन प्रफुल्लित हो आह्लाद को प्राप्त नहीं करेगा। हम सब शीघ्र ही सभी दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो पुनः वापस लौटने के लिये वाहन में बैठ रहे थे, न चाहते हुए भी हमें आश्रम से आश्रमवासियों से विदा लेनी पड़ रही थी। आश्रम में पढ़ रहे समस्त छात्र एवं अन्य कुलवासिजन श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज को प्रणाम कर आशीर्वाद ले रहे थे। बड़ा भावमय क्षण उपस्थित हुआ—जब चालक ने एक्सीलेटर दबाया और वाहन की गति के कारण वे सब हमसे ओझल हो गये। मार्ग में आये एक स्वयं संस्थापित शिक्षा संस्थान 'स्वामी दयानन्द हाई स्कूल का परिचय भी श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने श्री स्वामी जी महाराज को दिया। वार्तालाप के मध्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने बताया कि उन्होंने उड़ीसा में १८ शिक्षा संस्थान संचालित कर रखे हैं जिनमें से पाठक चार का आँखों देखा वर्णन पढ़ ही चुके हैं। अब पाँचवे संस्थान की तरफ हमारा वाहन जा रहा था। लगभग प्रातः आठ बजे हम लोग गाड़ी को छोड़, पैदल ही एक पहाड़ी पर चढ़ रहे थे जिसके ऊपर गिरिजन कन्याओं हेतु एक वैदिक कन्या गुरुकुल की स्थापना श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने करवायी थी। श्री स्वामी जी के प्रयत्नों से ही नीचे से ऊपर पहाड़ी पर बसे ग्राम तक सड़क का निर्माण तथा एक सरकारी स्वास्थ्य केन्द्र का निर्माण प्रगति पर था। ऊपर पहाड़ी पर स्थित गुरुकुल का वातावरण वहीं पर सुदूर विस्तृत हरे-भरे वनों की तरह किसी का भी मन मोह लेने को पर्याप्त था। गुरुकुल की कन्यायें पर्वतीय प्राकृतिक सुषमा की ही तरह आगन्तुकों के स्वागत हेतु प्रवेश द्वार सोत्सुक प्रतीक्षारत थी मधुर कल-कण्ठों से स्वागत करती कुल-पुत्रियों को देख सभी का मन गद्गद हो उठा। वहाँ सम्मिलित देव युग का भी कार्यक्रम था। जिसके अन्त में गुरुकुल की संरक्षिका ब्रह्मचारिणी सुषमा ने श्रद्धेय श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज से कुल-पुत्रियों एवं आयी हुई धार्मिक जनता को वचनामृत द्वारा आर्शीवाद देने का आग्रह किया। तब श्री महाराज जी ने कहा कि हिन्दू धर्म की रक्षा पुरुषों से नहीं अपितु

सदैव देवियों से होती आयी है, जब-जब संकट की घड़ियाँ आयी हैं, देवियों ने अपने बलिदानों के द्वारा सम्पूर्ण जाति को उतारा है और यदि कभी देवियों में दुर्बलता आयी तो वह हिन्दू जाति की दुर्बलता बन गयी। अब श्री स्वामी जी महाराज देवियों के संस्कृतिकरण कर रहे हैं तो हमें पूर्ण विश्वास है कि देश पुनः पतनोन्मुख अवस्था को छोड़ पुनः अपने गौरवास्पद पद पर प्रतिष्ठित हो जायेगा। तदनन्तर गुरुकुल समिति के मन्त्री जी ने श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज एवं उनके साथ आये अतिथियों से आत्म निवेदन करते हुए आभार प्रकट किया। इसके पश्चात् स्वल्पाहार ले हम पुनः चलने को सज्जित हुए। श्रद्धेय श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज ने कुल-पुत्रियों में प्रसाद वितरण हेतु २०१ रुपये गुरुकुल की प्रधानाचार्या को दिये। कुल कन्यायें एवं अनेकानेक ग्रामीण जन हमें नीचे सड़क तक जहाँ हमारी गाड़ी खड़ी थी विदाई देने आये। उनकी भावभोनी विदाई को देख जाते समय हम सभी की आँखों में आँसू तथा मन भर आया था। स्थान का सौन्दर्य तथा कुल कन्याओं के सौभ्य आवाभगत को स्मरण कर मन व्याकुल हो रहा था। उसी की चर्चा करते हुए सभी लोग गाड़ी में चले जा रहे थे। इन सब शिक्षा संस्थानों के देखने के पश्चात् श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के कार्यों एवं निष्ठा तथा उनकी अद्भुत शक्ति का ज्ञान हमें हुआ। उनकी कार्य करने की क्षमता एवं लगन हम सभी के लिये प्रेरक बन गयी थी।

सांय ७ बजे हमें उत्कल एक्सप्रेस से पुनः दिल्ली वापिस आना था, चालक को बार-बार साथी लोगों की अधैर्यता सूचक वाणियों का प्रहार सहन करना पड़ रहा था। लगभग ४॥ बजे उसने हम लोग को भुवनेश्वर स्वस्थान पहुँचाया। जहाँ सभी ने जाने की सज्जा में अपने सभी आवश्यक कृत्यों को पूरा किया। हम लोग जाने को ही थे कि तब तक भुवनेश्वर आर्य समाज के प्रधान-उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री प्रियव्रत दास मुंशी श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ आ गये उनकी ही बातों से पता लगा कि वे दो बार पहले भी आ चुके थे, किन्तु श्री स्वामी जी महाराज के फुलवाणी के कार्यक्रम पर होने के कारण उन्हें निराश होना पड़ा और अब मिले भी तो चलते-चलते कुशलक्षेम ही हो पाया था कि काल प्रवाह ने रोक दिया।

हम शीघ्र गन्त्रीस्थात्र पहुंचे। अभी गाड़ी के आने में विलम्ब था। उधर श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती जो हमें कुछ ही देर पहले आर्य समाज मन्दिर छोड़ कर गये थे। पुनः हमें विदाई देने हेतु आते दिखाई दिये। कुछ क्षणों के पश्चात् रेलगाड़ी भी आकर स्थान पर लग गयी। हम सभी ने अपने निश्चित स्थानों को अन्वेषित कर अपना-अपना आसन

जमाया, शीघ्र ही लोह पथ गामिनी भी गतिशील हो गयी। श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती तथा उनके साथ आये कर्मठ कार्य कर्त्ताओं की भावभीनी विदायी से हमारा मन भर आया था।

दिनांक १६ रात्रि को गाड़ी में बैठने के उपरान्त दिनांक १८ को १ बजे मध्यान्ह में उत्कल एक्सप्रेस से हम सभी दिल्ली निजामुद्दीन स्थान पर उतरे। जहाँ से शीघ्र ही हम लोग कार द्वारा आश्रम आ गये। आश्रम आने पर आश्रम के भक्तों में अनन्यतम श्री धर्मपालसिंह आर्य (मुख्य निरीक्षक आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश) ने एक संस्मरण सुनाया था जो पाठकों के लाभार्थ मैं यहाँ उपस्थित किये देता हूँ—श्री धर्मपाल जी ने कहा था कि—

"१९ फरवरी को संयोग कुछ ऐसा रहा कि श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी महाराज भुवनेश्वर आर्य समाज (उड़ीसा) में कथा के लिये एक प्रकोष्ठ में रूके हुए थे मैं भी वहाँ पहुंच गया। सांयकाल विश्व कल्याण महायज्ञ सम्पन्न कराके श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज भी भुवनेश्वर समाज में ही पहुंच गये। मैंने स्वामी जी से चर्चा की कि आपके तथा स्वामी सत्यप्रकाश जी के आर्य पत्र-पत्रिकाओं में वृष्टि यज्ञादि सम्बन्धी लेख प्रकाशित हो रहे हैं, अच्छा हो श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी यहीं इस समाज में ठहरे हुए हैं आपकी तथा उनको उन विषयों पर चर्चा हो जावे जिससे हम लोगों का शंका समाधान हो जाये। श्री स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा यह तो अतिश्रेष्ठ है। मैं श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी के पास पहुँचा एवं उन विषयों की यहाँ चर्चा करने के लिये प्रार्थना की तब श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी ने कहा धर्मपाल! तुम क्या कर रहे हो यह मेरा विषय ही नहीं, मैं इस विषय में बात क्या करूँगा। मैं इस उत्तर से चकित रह गया। जो श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी आर्य पत्र-पत्रिकाओं में स्पष्ट रूप से इन विषयों पर लिखते हैं वे अब सामने बातचीत से क्यों बच रहे हैं। सम्भवतः अपने पक्ष की असत्यता का ज्ञान उन्हें हो चुका था। अब व्यर्थ में ही उनके पक्ष के शोर मचाने वाले लोगों से निवेदन है कि वे स्वयं स्वामी सत्यप्रकाश जी से शिक्षा ग्रहण करें।"

प्रस्तुति—वाचस्पति मिश्र

संस्थान के तत्त्वावधान में आयोजित
दशम वैदिक शोध संगोष्ठी का विवरण

१३ जनवरी मध्याह्न १२ बजे से गुरुकुल प्रभात आश्रम में स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान के तत्वाधान में 'ऋग्वेद में पारिवारिक स्वरूप' विषय पर शोध संगोष्ठी वैदिक मन्त्र 'आ ब्राह्मण' पुरस्सर प्रारम्भ हुई। मन्त्रोच्चारणोपरान्त गुरुकुल के ब्रह्मचारियों द्वारा एक सुमधुर संस्कृत गीतिका द्वारा विद्वानों का स्वागत किया गया तत्पश्चात् गुरुकुल महा-भाष्योपाध्याय श्री वाचस्पति मिश्र ने वैदिक परम्परा के अनुरूप विद्वानों की धौतवस्त्र व नारिकेल प्रदान कर अभ्यर्थना की।

गोष्ठी की अध्यक्षता आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् श्री आचार्य विशुद्धानन्द जी ने की तथा संयोजकत्व का पद भार संस्थान के निर्देशक श्री निरुपण विद्यालंकार ने सम्भाला। गोष्ठी में पधारे अन्य वक्ता श्री डा० गणेशदत्त शर्मा प्राचार्य श्री लाजपतराय कालेज साहिबाबाद, डा० प्रशान्त वेदालंकार दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, श्री डा० निगम शर्मा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, श्री डा० महावीर जी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, श्री डा० भारत भूषण जी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, डा० कृष्ण कुमार भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष गढ़वाल विश्वविद्यालय गढ़वाल, श्री डा० विजेन्द्र कुमार शर्मा बदायूं, डा० रमेश कुमार लौ० संस्कृत विभागाध्यक्ष सनातन धर्म कालेज मुजफ्फरनगर, श्री पं० रंगाचार्य जी सस्कृत पण्डित पलकुण्डा, डा० जगदीश प्रसाद गुप्ता मेरठ, द्वारा उपर्युक्त विषय पर अपने-२ विचार रखे अन्त में अध्यक्ष महोदय ने सुलझे विचार प्रस्तुत किये। तत्पश्चात् पूज्य श्री स्वामी जी महाराज ने आशीर्वचनों में विद्वानों के शोध पत्रों पर की गयी शंकाओं का उत्तर देते हुए प्रस्तुत विषय की वर्तमान काल में उपादेयता बताते हुए कहा कि मनुष्य आज भौतिक उन्नति के शिखर पर चढ़ता जा रहा है, वहीं उसका हृदय संकुचित होता जा रहा है। पारिवारिक सम्बन्ध औपचारिक मात्र रह गये हैं, उसी उद्देश्य से आप बुद्धिजीवी लोगों के लाभार्थ यह विषय रखा गया।

अन्त में ४-३० बजे शान्ति पाठ के साथ संगोष्ठी विसर्जित हुई।

—संस्थान सचिव

ओ३म्

"प्रत्यक्षम्"

गोष्ठी के अध्यक्ष दर्शन विद्यावाचस्पति आचार्य विशुद्धानन्द जो शास्त्री द्वारा गोष्ठी में प्रस्तुत अध्यक्षीय आशु रचना (स०) ।

(१)

श्रद्धेया: शुचिमानसा: सहृदया: स्वर्भारतीमण्डिता
योगेनाप्तसमृद्धिसिद्धिनिधियो वेदप्रभामण्डिता: ।
सञ्चाल्यामखाचया गुरुकुलं भव्यं प्रभाताश्रमं
कस्यार्चामर्हन्ति नो भुवि [1]विवेकानन्ददा: कोविदा: ।।

(२)

[2]स्वामिसमर्पणानन्दपुण्यस्मरणकारणात् ।
वैदिकं शोधसंस्थानं समास्थाप्यत चाश्रमे ।।

(३)

[3]शोधसंगोष्ठिका तस्य, आश्रमवार्षिकोत्सवे ।
निरूपणमहाभागैरायोज्यत निदेशकै: ।।

(४)

[4]ऋग्वेदसंहितायां यत्परिवारस्वरूपकम् ।
प्राकाश्यत विपश्चिद्भि:, अस्यां गोष्ठयां समर्चितै: ।।

(५)

वैदिकप्रार्थनाऽऽनन्ददं वन्दनं
वर्णिभि: साम्प्रतं यच्च सारस्वतम् ।
संस्कृते सत्कृतोऽयं विपश्चिद्गण:
स्वामिवर्याय धत्ते सदाऽऽभारिताम् ।।

(६)

[5]टीकरीग्रामभाग्यं तु धन्यं महत्
यत्र संवाहिता देवभाषापगा ।
मेरठान्तर्गतानां जनानां हृद:
पावयन्ता सदा वेदसन्देशन: ।।

(७)

अद्य सन्तश्चमत्कारपूजारता
आंगलभाषासमाराधने संरता: ।
सर्वभाषाजनयस्ति या भारते
सा परित्रायते दुर्भगैर्वा सुतै: ।।

सर्वपाठयक्रमादर्धचन्द्रं मुदा
हा ! प्रदायैव निःसारितं संस्कृतम् ।
संस्कृतं वाङ्मयं को नु रक्षिष्यति
यत्समज्ञानपुञ्जं बिभर्त्यञ्जसा ॥

(९)

सज्जिता सम्भवन्त्यात्मवन्तः सुर
प्रीणनाय स्वयं साधु बद्ध्वा कटिम् ।
नो विदेशेभ्य उत्साह आयास्यति
आत्मरक्षाक्षमाऽऽस्ते यतः सन्ततिः ॥

(१०)

मन्त्रगानेन चाराधिता शारदा
वर्णिभिः सुन्दरैर्यज्ञदेवादिभिः[6] ।
[7]श्री रमेशः कुमारो लवोपाधिना
भूषितः संलसत्यद्य स्वैभाषणैः ॥

(११)

तत्रायुः सुरभारतीरसविदो विद्वत्सभाभूषणाः
ते वै [8]भारतभूषणा अविरलं वेदप्रकाशे रताः ।
वेदालंकृतयः[9] प्रशान्तमतयः स्वभारतीयाजनाः
आचार्यास्तु[10] सुधाकरामरगिरासंरक्षणे सुव्रताः ॥

(१२)

आचार्यास्तु [11]गणेशदत्तसुधियो लब्धप्रतिष्ठा भुवि
मान्यः [12]कृष्णकुमार एष समगात् सूरिर्हरिद्वारतः
विद्वन्मण्डलमण्डनो [13]निगमशर्माम्नायवाग्निधेः
पारं यात इतोवरेण्य [14]विजयेन्द्रो वै [15]महावीरवत् ॥

(१३)

स्ववाग्वारिधरा वराऽमृतपयश्चाद्य प्रभाताश्रमे
पाण्डित्यप्रतिभातदिग्विलसिता वर्षन्ति विद्याधराः ।
तेषां वाक्सरिता भृतो रसमयो ह्यानन्दवारान्निधिः
श्रुत्वाऽऽमज्जितुमागतः खलु [16]विशुद्धानन्द एव स्वयम् ॥

(१४)

[17]विष्णुना वा [18]सुकेश्या शुभालंकृता
गौरवं सम्भजन्ती प्रभाताश्रमे ।
आगतैः पण्डितैः सत्कुटुम्बप्रथा
बोधसम्पन्मधु [19]प्रीणितैः साम्प्रतम् ॥

(१५)

यत्र विद्वद्वरः संस्कृतः पण्डितः[20]
[21]ईश्वरः सिंह-रूपेण यत्रास्थितः ।
शोभते वन्दनीयश्च [22]श्री माधवः
[23]रत्नसिंहोऽपि यत्रास्थितः शोभते ॥

(१६)

प्रश्नशङ्काविधानेन वै श्रोतृभिर
मोदितः पण्डितानां गणः साम्प्रतम् ।
धन्यवादेन तान् प्रीणयामो वयं
शोधलेखान् निजान् श्रावयन्ते च ये ॥

संकेत

१. श्री स्वामी विवेकानन्द सरस्वती (गुरुकुल के आचार्य) ।
२. श्री स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती (संस्थान के प्रेरणा स्रोत) ।
३. डा० निरुपण विद्यालंकार (संस्थान के निर्देशक) ।
४. ऋग्वेद संहिता में पारिवारिक स्वरूप (गोष्ठी का विषय) ।
५. टीकरी ग्राम (आश्रम की अवस्थिति) ।
६. गुरुकुल के ब्रह्मचारी (यज्ञदेव, संजीव, संजय, प्रदीप, विद्यानन्द, आनन्द) ।
७. श्री रमेश कुमार 'लव' (संस्कृत विभागाध्यक्ष सनातन धर्म कालेज मुजफ्फरनगर) ।
८. डा० भारतभूषण (गु० का० वि० हरिद्वार)
९. डा० प्रशान्त वेदालंकार (हंसराज कालेज दिल्ली)
१०. डा० सुधाकराचार्य (मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ)
११. डा० गणेशदत्त शर्मा (प्राचार्य लाजपत कालेज साहिबाबाद) ।
११. डा० कृष्ण कुमार (निदेशक प्राच्य विद्या एकादमी हरिद्वार) ।
१२. आचार्य डा० निगम शर्मा (संस्कृतविभागाध्यक्ष गु० का० वि० वि० हरिद्वार) ।
१३. डा० बिजेन्द्र कुमार (प्रवक्ता बदायूं) ।
१५. डा० महावीर (गु० का० वि० वि० हरिद्वार) ।

१६. आचार्य विशुद्धानन्द जी (अध्यक्ष शोध संगोष्ठी, नि० बदायूं)।

१७. डा० विष्णु शरण 'इन्दु' (संस्थान की गोष्ठियों में नियमित श्रोता)।

१८. सुश्री सुकेशी (मेरठ)।

१९. डा० मधु सक्सेना (संस्कृत विभागाध्यक्ष आर० जी० कालेज मेरठ।

२०. पण्डित पालवंच तिरूमल गुदिमेल वेंकट रंगाचार्य संस्कृत पण्डित, पालकोन्डा (आन्ध्र प्रदेश)।

२१. श्री ईश्वरसिंह आर्य भूड़पुर (गोष्ठी के प्रबुद्ध श्रोता)।

२२. श्री माधव सिंह 'प्रिंसिपल' बड़ौत (उप-प्रधान आ० प्र० स० उत्तर प्रदेश)।

२३. श्री रतनसिंह (नियमित श्रोता)।

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । या जाता पूतदक्षसा ॥

(सामवेद उत्तरार्चिक)

अर्थ— वयं (हम सब) **सोम पीतये** (ब्रह्मानन्द का पान करने के लिये) **या** (जो) **पूतदक्षसा जाता** (पवित्र वल से ही प्रकट उत्पन्न हुये हैं उन अपने) **मित्रं वरुणं** (मित्रों एवं सगे सम्बन्धियों को) **हवामहे** (उसका पान करने के लिये पुकार रहे हैं)।

जीवन में जव भक्त को ब्रह्मानन्द पान करने का एक स्वाद मिल जाता है तो वह पुनः पुनः उसी का आनन्द लेने लगता है और संसार के सभी आनन्द जिसे हम विषयानन्द कह सकते हैं से वह पृथक् होकर एकान्त में बैठकर वह सदा उसी आनन्द का पान करने के लिये उत्सुक रहता है अब विश्व के सभी आनन्दों का मूल्य उसके सम्मुख कुछ नहीं रह जाता वह एक प्रकार से स्व अर्थी हो जाता है, किन्तु यह स्थिति सामान्य भगवद् भक्तों की है वैदिक भक्त इतना क्षुद्र नहीं होता वह उस ब्रह्मानन्द को प्राप्त करने के लिये जो उसके निकटवर्ती मित्र तथा वरुण, साथी एवं वरण किये हुये सगे सम्बन्धी हैं उन्हें उस आनन्द से वंचित नहीं रखना चाहता। वह उस ब्रह्मानन्द रस का पान अपने तक सीमित नहीं रखना चाहता किन्तु अन्यों को भी उसका पान कराना चाहता है। इसलिये वह प्रार्थना कर रहा है कि सोम रस, ब्रह्मानन्द के पान के लिये मैं अपने साथियों एवं सगे सम्बन्धियों को ही बुला रहा हूँ। सो मेरे साथियों एवं सम्बन्धियों तुम भी आओ इस ब्रह्मानन्द का पान करो किन्तु मित्रों मेरे आह्वान को सुनकर ऐसे ही तुम तन मन मलिन होकर मत आना यदि तुम तन-मन से मलिन होगे तो तुम्हें उसका आनन्द नहीं मिल सकेगा उस ब्रह्मानन्द का पान तुम त्रिकाल में भी नहीं कर सकते। उसके पान के लिये तुम्हें शुचिव्रत होना पड़ेगा जब पवित्रता ही तुम्हारी शक्ति हो जायेगी और इसी में तुम सबको दोगे तो लोग तुम्हें पवित्र बल से ही उत्पन्न हुआ, प्रगट हुआ समझेगें तब तुम उसके आनन्द को प्राप्त कर सकोगे इसलिये तुम पहले पवित्र बनो। पुनः इस सभी सोम का पान मिलकर करेंगे। इसलिये अब इस सोम पान ब्रह्मानन्द रस के पान के लिये मैं तुम्हें बुला रहा हूं।

ऋग्वेद संहितायां पारिवारिकं स्वरूपम्

—निगम शर्मा
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार।

अमृत बिन्दु सदृशानि जरारोगबाधकानि सर्वानन्द जननानि सुखैक-हेतूनि निरुपद्रवाणि तावद्वेदाक्षराणि। वेदध्वनिं श्रुत्वा ऽसुराः खलु संकोचमायान्ति देवाश्च विकसन्ति। निदारितमनश्चीवरा धीवरा विभूषितवसुन्धरा धुरन्धरा एव वेदधारणे कारणे च प्रभवन्ति। सूर्योपासनया गुरूपासनया च कलानां विद्यानां च पारं याति पुरुषः। न तत्र वेदसेविनि पुरुषे कृतान्तस्य दृष्टयो नियतन्ति।

यो ज्ञानयोगमारोढुमिच्छन्ति, कर्मैव तस्य साधनम्, परं योगारूढस्य तु कर्मसन्यास एव साधनत्वेन युज्यते। एतेन चित्तशुद्धि र्भवति ततश्च ज्ञानयोग सिद्धिः। उक्तं च भगवता व्यासेन—

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमानेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्या परमात्मा प्रकाशते॥

प्रकाशितेश्वरश्च पुरुषः सुलाभो भवति लब्धसर्वसुखश्च। अस्यां च मनोज्ञपरम्परायां जायमानो बालको मातृकर लालितो गुरुभि र्निभालितः पितृमान् प्रशस्तः पिता यस्य स भवति। पुरूरवाः कामयते—

'कदा सूनुः पितरं जात इच्छाचक्रं नाश्रु वर्तयद्वि जानन्।'

(ऋ० १०-९५-१२)

उत्पन्नः पुत्रः कदा पितुरङ्कमलङ्कर्तु मिच्छेत्? कदा च कज्जल-मलिनमश्रु रथचक्रमिव वर्तयेत्? मेघमन्ताविद्युदिव उर्वशी सान्त्वनया समादधाति—

'प्रतिब्रवाणि वर्त्तयते अश्रु चक्रं न क्रन्ददाध्ये शिवायै।'

(ऋ० १०-९५-१३)

आश्वासयामि त्वामहं मनोनन्दिनीं पीडां ते पुत्रश्चक्रमिव क्रन्दन् दास्यति ।

एवं दम्पती इच्छत्व: कल्याणस्वर: पुत्रस्त्वरया गृहाङ्गणं प्रसन्नयेत् । विष्णुनेव भारत कुलनन्दिना मनुनाऽगादि 'भूतं भवद्भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति' ।

संस्कारै: संस्कृतो गृहानन्दसंचालको बालक: पुण्यसंजननाय विविधा विद्या गुरुभ्य आददाति । संकल्पजाल वासितायां विरोध विद्रोहपरम्परायां राजर्षि देवर्षि धुरन्धरायामस्यां वसुन्धरायां सत्वोद्रेके विक्रममाण: शिशु: प्रोन्नतिं तनुते—

उत त्वं सख्ये स्थिरपीत माहु र्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम् ।।

(१०-७१-५)

विद्यागृहमेव सर्वरसायनमण्डितं स्थिरं पानं भोगसाधनं च निर्वहति । येन तथा श्रद्धया विद्योपार्जनं कुर्वन्ति, न ते वाचामिनेषु मेधाविषु पदसंचारं जानन्ति, केचन अधेनुमपि मायाधेनुं कृत्वा विचरन्ति, न ते स्वात्म लाभं जानन्ति न वाऽन्येभ्य: सन्तोषं दातुं समर्था: तेषां हृदि जायमाना वाग्लता शब्दपुष्पहीना अर्थफलरहिता च मुर्मुरायते । अथ ये वाग्योग विदस्ते तु—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखाय: सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ।।

(१०-७१-२)

अथैव सखायो दृढां मैत्रीं जानन्त्यानयन्ति च । तेषां वाचि च भद्रा लक्ष्मीरानन्दं सृजति ।

अस्यां स्निग्धायां वाचि सर्वे देवा: स्वतेजो निदधति । य इमां न जानाति, महद्भयं तस्य, ये च जानन्ति त एव समाधानभावा: प्रसन्नतां शान्तिं च लभन्ते—

ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदु: ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ।।

(१-१६४-३९)

एवं प्राप्य विद्यां पुरुष इमां पृथ्वीं कृतार्थयति आत्मसुखेन चान्यान् खल्वपि तर्पयति । प्राप्त विद्या स: पुरुषो रूपवान् भवति, प्रशंसां च हृदि निधाय सदैव मनो मोहयति—

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यवि द्यवि ।। (१-४-१)

ध्यानेन जपेन विद्याप्रकर्षेण च रूपसमृद्धि र्जायते स्मृता मंत्रा मनो दीपयन्ति, उदारेण गुणभारेण च मुखं कान्ति प्रदं कुर्वन्ति ।

विषम विषयतोये मज्जतां मानवानां कृते योऽयं पारिवारिक: स्वरूप विधि निर्धारित:, ये खल्विमं व्रतनियमं पालयन्ति ते यमस्य निर्विषया भवन्ति । विद्ययाऽनन्तरं च सम्भृतात्मने पुरुषाय विवाहविधि: प्रतिपादिता । यमनुष्ठाय निष्ठाबान् पुरुष: पौरुषमाप्नोति मङ्गलाचारं च ।

तथैव विद्याविनयसम्पन्ना यज्ञोपवीतेन पवित्रीकृतकाया सुलक्षणा कन्याऽपि सुरूपाऽनुकूला-च स्यात्—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत्य पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं विपरेतन ॥

(१०-८५-३३)

पतिश्च—

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथास: ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादु र्गार्हपत्याय देवा: ॥

(१०-८५-३६)

वृद्धा: सिद्धास्तपस्विन: सत्यवचस आशीर्ददति—

इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायु र्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रै र्नप्तृभि र्मोदमानौ स्वे गृहे ॥

(१०-८५-४२)

वधूं पतिं च विशिष्टाऽऽशी:—

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्ववां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु ॥

(१०-८५-४६)

आशाफलतरवो गुरवो मृदुना च कामयन्ते—

अनृक्षरा ऋजव: सन्तु पन्था येभि: सखायो यन्ति वरेयम् ।
समर्यमा सं भगोनो निनीयात्सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवा: ॥

(१०-८५-२३)

लब्धप्रतिष्ठायामपि स्त्रियां न पुरुषो विषयारण्ये रमणीयेऽपि सक्तो भवेत् । काममेघे दीप्ता विद्युदिव उर्वशी वारयति—

न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ।

(१०-९५-१५)

अथ च सैवाशिषा युनक्ति कामनया-च—

प्रजा ते देवान् हविषा यजाति स्वर्गउत्वमपि मादयासे ।

प्राप्त कुटुम्ब सुखाय पुरुषाय षड्जीवनानि भवन्ति। अर्थागमः, स्वस्थशरीरता, प्रिया प्रियंकरी मधुरालापा, कुलाभिमानी पुत्रः, अर्थकरी विद्या, समाजे प्रतिष्ठाकरं कर्म च। एतानि समादाय मोदमानः पुरुषो यशस्करमायुः सम्मानं च लभते। परं सत्यमेव सदा व्यवहारेऽपि वर्त्तनीयम्। यथा ऽऽह—

भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन्।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्रवाणम्॥
(४-२४-९)

उदाहरण कल्पनया वेदः खल्वसत्या न्निवारयतिमनसि कल्पना क्रियेत, केनापि पुरुषेण क्वचिदधिकं मूल्यं प्रदाय निम्न कोटिकं वस्त्रं क्रीतम्, मार्गे गृहेवा प्रतिबोधित स्त्वया तु न सम्यक् कृतम् वञ्चितोऽसि खलस्वभावेन वणिजा। प्रश्न उदेति, किं तत्र तेन गत्वा तद्वस्त्रं दत्त्वा पुन नवीनं सुन्दरं वस्त्रं समानेयम्, वेदः खलु वारयति—वस्त्र क्रयणप्रसंग एवं त्वया सावधानेन भाव्यमासीत्, तदा तु त्वं प्रसन्न इव, तृप्त इव, सन्तुष्ट इव निवृत्तोऽसि। अधुना किमिच्छन् पुनरागतः। नैवं भावि—दीना दक्षा वाणी व्यवहारं सततं पालयन्त्येव।

तत्र ब्राह्मणेन यजन् याजनाध्ययनाध्यापयन् व्यवहारेण जीविकाऽर्जनीया। क्षत्रियेण शौर्यकर्मणा, वैश्येन व्यापारव्यवसायोद्योगादिना शूद्रेण च सेवया। तत्र ब्राह्मणेन—

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दन्।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन्॥
(१०-६७-१)

अथ च—

अग्नि र्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्॥ (१-१-५)

क्षत्रियेण च वलवर्णपुष्टेन न्यायवता दयावता दक्षेण शक्तेनभाव्यम्। इन्द्रस्य च ओजोविषये शक्तिं धारण क्रियां प्रक्रिया च सम्यक् जानीमः। जितेन्द्रियो हि पुरुषः प्रजां वशे आनयति नमयति च शक्तान्। यथा ऽऽह—

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वयस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः॥
(२-१२-९)

शची पौलोमी च प्रवर्धयति—

मम पुत्रा शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि सजया पत्यौ श्लोक उत्तमः॥ (१०-१५९-३)

सर्वेषां चैतत्परमं कर्म—

इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत् ।।

(१०-१४१-४)

नीति श्चास्माकं कीदृशी स्यात् ?

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।
अर्यमा देवैः सजोषाः ।। (१-९०-१)

अथा च नानाविधे यन्त्र क्रियायामुद्यमे गृहनिर्माणविधौ यानविमान-क्रियासु च सततं प्रोत्साहदक्षेण भाव्यम्—

वेद यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।
वेद नावः समुद्रियः ।। (१-२५-७)

इति विमान निर्माणे जलयान शिल्पे च प्रेरणा अथापि गृहनिर्माण-कर्मणि —

ता वां वास्तू न्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि ।। (१-१५४-६)

एकस्मिन्नपि गृहे नानाकर्माणः पुरुषाः सानन्दं निवसन्ति—

कारुरहं ततो भिषगुपल प्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवोऽनुगा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव ।।

(९-११२-३)

अनेन वेद आशीर्ददाति। सर्वां च पृथिवीं स्वर्णपुष्पां विधातुं प्रेरयति च—

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मद्विः ।
ऋतवाक्येन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ।।

(९-११२-२)

स्वे स्वे कर्मणि निरता अपि सत्यं श्रद्धां ब्रह्म ब्रह्मचर्यं जना न परित्यजन्तु ।

ये शठाः परप्राणानुजीविनो न ते कदापि प्रोत्साहनं लभेरन् । अथ च न ते यौगक्षेम भाजोऽपि भवेयुः । तेषां धनान्यादाय ते निर्वचना विधेया अथवा ते गुणस्तोतारः स्युः सलिले मण्डूका इव । यथा मण्डूकाः सलिले निवसन्त एव विवचना भवन्ति पृथग्भूताश्च निर्वचना जायन्ते—

योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तम आवो मूर्धानमक्रमीम् ।
अधस्पदान्य उद्वदत मण्डूका इवोदकान्मण्डूका उदकादिव ।।

(१०-१६६-५)

कुमारेण च पिता सदैवाभिगमनोयो माननीयश्चानुकरणीय—

कुमार श्चित्पितरं वन्दमानं प्रतिनानाम रुद्रोयन्तम् ।
भूरे दातारं सत्पतिं गृणीये स्तुत स्त्वं भेषजा रास्यमस्मे ॥
(२-३३-१२)

द्यूतादिभि र्नैवात्मा हास्यतां नेयः, एते चाक्षाः—

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरत्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥
(१०-३४-९)

श्रमार्जितेन धनेन ईश्वरार्पणबुद्धया जीवनोपायः कल्पनीयः, तथोक्तम्—

अक्षै र्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्य मानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः ॥
(१०-३४-१३)

पुरुषार्थपरेषु कार्यतत्परेषु पुरुषेषु राष्ट्रभावना लोकतन्त्रे संगठने संघटने च सदैव विकासं सप्रयासं समापद्य त वागाह—

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मां देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्याविशयन्तीम् ।
(१०-१२५-३)

स्वराज्यं प्रति मर्मज्ञाऽर्चना च—

सहस्रं साकमर्चत परिष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(१-८०-९)

प्रतिदिनं प्रातरागत्य उषा अस्मान् कार्यतत्परान् करोति, बोधयति च—

इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ता ज्ज्योति स्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभाती र्गातुं कृण्वन्नुषसो जनाय ॥
(४-५१-१)

प्रतिदिनं मित्रभूतः सखा सूर्यश्च मित्रवद्व्यवहारे जनान् प्रयामयति—
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्यशिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥
(३-५९-२)

सेवाव्रतं गहनमाहु र्विचक्षणाः, ऋग्वेदश्च सेवातत्परेषु कल्याणीं वाणीं निदधाति—

अरं दासो न मीढुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ।।

(७-८६-७)

प्रभुनिष्ठायां मग्नं प्रिये प्रयासे लग्नं श्रान्तं पुरुषं देवाः सहायतां रक्षां च कुर्वन्ति—

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ।।

(१-१७९-३)

बहिर्गमनात्प्रागात्मानं शरीरं च शोभयन्तु । साधितवेषः प्रसाधित-केशः पुरुषो रमणीयो लगति स्त्रियश्च विशेषेण—

प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेने इव तन्वाइशुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ।।

(२-३९-२)

धनवैभवकामनया सदया नीति र्मार्गो वाश्रयणीयः—

वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवां इडाना ऋषिवत्स्वस्तये ।
प्रीता इव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु ।।

(१०-६६-१४)

सर्वेषु कामेषु कार्येषु च मनसा कल्याणपरेण भाव्यम्—

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ।।

(८-१९-२०)

सदैव दानपरेणोदारचेतसा भाव्यम्—

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ।। (८-१४-२)

समनस्कः पुरुषः सुखं लभते न प्रमादी –

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्रा ।। (८-२-१८)

ऋग्वेदं य धारयति, तस्य भयं कुतः !—

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्
अनाभयिन्ररिमा ते ।। (८-२-१)

यो बिभेत्यासमन्तात्स आभयी, न बिभेतिकुतश्चित्स अनाभयी, तत्सम्बुद्धौ ।

देवाश्च यं शरणागतं रक्षन्ति, न स कदापि हीयते, पराजयं वा प्राप्नोति—

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नू चित्स दभ्यते जनः ।। (१-४१-१)

सदा कार्यं विचार्य कार्यम् । इन्द्रस्य सभायामृषीणां सहस्रम् । अतएव द्विनेत्रोऽपि सहस्राक्ष इति कथ्यते—

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ।।
(१-२३-२४)

परम्परया प्राप्तं ज्ञानं कुमारं च निरन्तरं प्रवर्धयेत्, येन विद्यया ललितया कलया संकलनेन प्रशस्तया वाचा च पृथ्वीयं सिद्धा प्रसिद्धा वृद्धा खल्वपि नवीनेव प्रवीणयन्ती सुखानि संचारयेत्—

कः कुमारमजनयद्रथं को निरवर्तयत् ।।
कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथाभवत् ।।
(१०-१३५-५)

अतिथिप्रिया चेयं भगवती वसुन्धरा—

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ।।
(१०-१४२-८)

मानवः प्रसन्नः सुशीलो गृहान्निर्गच्छेदागच्छेत्त्च । संवर्धनानि निरुपद्रवाणि प्रोत्साहनानि सदैव मानव—पुत्राय लभेरन् । जायेरंश्च साहसधनानां प्रियप्रयोजनानां प्रियाणि निदर्शनानि । तपः पराणां स्वाध्यायैक-संयमाना रथा मनोरथाश्च प्रबर्धन्ताम्—

धनस्य यौवनस्य च कदाप्यभिमानो न कर्त्तव्यः । यतोहि शरीरमेतत् पतयिष्णु—

तव शरीरं पतयिष्णुर्वतव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ।।
(१-१६३-११)

अतः ईश्वरस्यैव शरणं वरणीयं तस्यैव हस्तः सदा सुखकरः शान्तिदायक श्च—

क्व स्य ते रुद्रमृडयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ।।
(२-३३-७)

इयं रूपलावण्यमयी जवानुदायिनी सृष्टि: कथं कस्मादुत्पन्ना, केन वयं मरणाय तत्परा अपि जीवाम: क्व च ब्रह्मणि प्रतिष्ठा न:, इति प्रचुराणां चतुराणां कृते वेदस्याज्ञा प्रेरणा च—

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ।। (१०-७२-२)

गृहाद् गमनमागमनं च सदैवानन्दनिर्भरं स्यात्—

मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ।। (१०-२४-६)

सर्वे खल्विमाममृतभुज ऋग्वेदस्य सादरं वाचं शृण्वन्तु । अस्माकं ब्रह्म च सदा प्रशस्तं वर्धत—

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभि विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।।
(१०-१३-१)

ऋषीणामग्रपदो विश्वामित्र: खलु भारताय जनाय स साधुवादमाशीर्वादं ददाति—

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ।।
(३-, ३-१२)

आरुहेमा स्वस्तये । (१०-६३-१०)

ऋग्वेद संहिता में पारिवारिक स्वरूप

—डॉ० सत्य प्रिय शास्त्री संस्कृत विभागाध्यक्ष
जे० एस० हिन्दू कालेज अमरोहा

ऋग्वेद में पारिवारिक स्वरूप का उल्लेख बहुत ही महनीय रूप में हुआ है। पारिवारिक जीवन मानव का गार्हस्थ से आरम्भ होता है, क्योंकि पति-पत्नी जब माता-पिता का गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त करते हैं तब उनका व्यवहार अपने पुत्र पुत्रियों के प्रति किस प्रकार का होता है, इसका उल्लेख हमको ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है जिसका वर्णन इस लेख में अति संक्षेप में किया जायेगा।

पिता और माता

(क) **पिता**—ऋग्वेद में पिता की प्रतिष्ठा सर्वोपरि स्थापित की गई है, वह सभी साम्पत्तिक अधिकारों से सम्पन्न है, पिता परिवार में आदरणीय होता है। ऋग्वेद में इन्द्र को पिता और माता के रूप में स्तुति करते हुये कहा गया है "हे वसु तुम हमारे पिता हो, हे शतक्रतु तुम्हीं हमारी माता हो इसलिये हम तुम्हारे सौमनस्य की कामना करते हैं।"

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अघा ते सुम्नमीमहे ।।ऋ० ८/९८/११

पुत्र पिता के वचनों को पालन करने में सदा उत्सुक रहते हैं अग्नि की प्रशंसा में कहा गया है —"अग्नि के आदेशों को श्रवण करने वाले उन्हें ऐसे ही शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण कर देते हैं, जैसे पुत्र पिता के वचन को पालन करते हैं।"

पितुर्न न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
ऋ० १/६८/५

ऋग्वेद में पिता को ज्ञान एवं शारीरिक शक्ति सम्पन्न समझा गया है अत एव जो गूढ़ पहेलियों को सुलझा लेता है उसको पिता का पिता "**पितुष्पिता**" कहा गया है—

कविर्यः पुत्रः स ईमाचिकेत यस्त विजानात्स पितुष्पिता सत् ।
ऋ० १/१६४/१६

ऋग्वेद में अग्नि के समान सुगम होने की प्रार्थना करते हुये कहा गया है—हे अग्नि तुम हमारे पिता के समान सुगम हो—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ऋ० १/१/९

पुत्र पिता का आदर सत्कार भी करता है जैसा कि अग्नि को पिता के समान सत्कार करने योग्य कहा गया है—

"जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेऽस्पते मनुषा यत्समिद्धः"
ऋ० २/१०/१

पुत्र पिता से भूख प्यास निवारण की प्रार्थना करते हैं जैसा कि ऋग्वेद में इन्द्र के द्वारा प्रतिपादित किया गया है—

"मा हवन्ते पितरं न जन्तवो" ऋ० १०।४८।१

ऋग्वेद में पिता का गौरवपूर्ण उल्लेख हुआ है वह इससे और स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश देवों के साथ पिता के रूप में प्रार्थनायें उपलब्ध होती हैं—यथा—

"धौर्मे पिता जनिता" ऋ० १।१६४।३३
"पिता माता च रक्षतामवोभिः" ऋ० १।१८५।१०
'धौ३ष्पितः पृथिवी मातरध्रुगग्ने" ऋ० ६।५१।५

इत्यादि मन्त्रों से स्पष्ट है ।

(ख) माता—ऋग्वेद में माता की स्थिति का उल्लेख पत्नी से भी अधिक उन्नतावस्था में हुआ है, क्योंकि ऋग्वेद में वीर सन्तानों की कामना अनेक स्थानों पर देवों से की गई है पत्नी को भी "**वीरसूः**" का आशीर्वाद ऋग्वेद के विवाह सूक्त १०।८५।१० में दिया गया है, इसलिये वीर पुत्रों जन्म देने वाली माता का गौरवपूर्ण स्थान होना स्वाभाविक ही है ।

ऋग्वेद में माता की महत्ता इससे भी स्पष्ट प्रतीत होती है कि जिस प्रकार स्रोताओं ने अपने को पुत्र स्थान में और देवों को पितृस्थानीय

मानकर प्रार्थनायें की गई हैं उसी प्रकार अनेक स्थानों पर देवों को माता के रूप में स्वीकार किया गया है। उनसे माता द्वारा प्राप्त सुख शान्ति एवं पालन पोषण की इच्छा प्रकट की गई है जैसा कि ऋग्वेद के साक्ष्य से स्पष्ट है—

द्यौ को पिता कहा गया है तो पृथिवी को माता मानकर ऋग्वेद में उल्लेख हुआ है—

"मे माता पृथिवी महीयम्"— ऋ० १।१६४।३३
"पिता माता रक्षतामवोभिः"— ऋ० १।१८५।१०
"मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात्"— ऋ० ५।४२।१६
"सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम्"— ऋ० ५।४३।१५
"द्यौ३ष्पितः पृथिवी मातरध्रुगग्ने"— ऋ० ६।५१।५

इसी प्रकार इन्द्र को पिता के साथ माता भी कहा गया है—

"त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।

ऋ० ८।९८।११

माता पिता द्वारा पुत्री की अपेक्षा पुत्र की अधिक आकांक्षा ऋग्वेद में सामान्यतथा 'प्रजा' या अपत्य की कामना की गई है जिसका सामान्य अर्थ पुत्री दोनों होता है। लेकिन ऋग्वेद में ऐसे साक्ष्यों की बहुलता है जिसमें पुरुष सन्तान की कामना परिलक्षित होती है क्योंकि वंश को चलाने वाला पुत्र ही माना गया है। संरक्षण तथा धनार्जन के लिये पुत्र ही अधिक उपयोगी हो सकता है पुत्री नहीं इसलिये पुत्र की विशेष रूप से कामना की गई है और पुत्र प्राप्ति के लिये ऋग्वेद में आशीर्वाद पाया जाता है— अपने घर में आनन्द प्राप्त करते हुये, पुत्रों और नातियों के साथ खेलते रहो।"—

क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वगृहे ऋ० १०।८५।४२

गुणी पुत्रों की कामना—

ऋग्वेद में देवों से वीर, पराक्रमी, परिश्रमी, शक्ति सम्पन्न योद्धा, कर्मनिष्ठ और कर्त्तव्य परायण पुत्रों की अभिलाषा तथा प्रार्थनायें की गई हैं। ऋग्वेद में अग्नि के उपासक के सम्बन्ध में कहा गया है कि अग्नि अपने उपासक को विशाल कीर्ति युक्त, भक्त अजेय और पिता के वंश को बढ़ाने वाला पुत्र प्रदान करता है—

अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुवि ब्रह्माण मुत्तमम्।
अतूर्त्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दबाऽशुषे॥ ऋ० ५।२५।५

शत्रुञ्जयी पुत्र की कामना करते हुये कहा गया है कि अग्निदेव हमारे लिये बलशाली (वाजी) शत्रुञ्जयी (अभिषाड) नवीन (नव्यः) पुत्र प्राप्त हो।

नो वाज्यभीषाडेतु नव्यः— **ऋ० ७।४।८**

ऋग्वेद में एक स्थान पर उल्लेख किया गया गया है—अग्नि अपने उपासक को जलों को प्राप्त करने वाला (**अप्सा**) आक्रमण का प्रतिरोधक करने वाला, शत्रु को कपाने वाला (**ऋतीषह**) और शतपुरुषों का स्वामी पुत्र प्रदान करता है—

अग्नि रप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम्।
यस्य त्रसन्ति शवसः सञ्चक्षि शत्रवो भिया। **ऋ० ६।१४।४**

ऋग्वेद के एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि अग्नि स्तोता को वीर यशस्वी एवं कर्मनिष्ठ पुत्र देता है—

अग्निः सप्तिं वाजं भरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठम्।

ऋ० १०।८०।१

ऋग्वेद में अग्नि से प्रार्थना करते हुये कहा गया है—"हमारे वंश का विस्तारक सन्तति को उत्पन्न करने वाला पुत्र प्राप्त हो, हे अग्निदेव हमारे प्रति तुम्हारी यही सुमति का अनुग्रह हो"—

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे।

ऋ० ३।१।२३

ऋग्वेद में सोम के विषय में कहा गया है जो व्यक्ति सोम देव का सत्कार करता है सोम देव उसे कर्मनिष्ठ गृहकार्य में दक्ष यज्ञानुष्ठान तत्पर सभा के योग्य और पिता की कीर्ति बढ़ाने वाला पुत्र देता है—**सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति। सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृ श्रवणं यो ददाशदस्मै।**

ऋ० १।९१।२०

आजकल के समान ऋग्वेद में पुत्री के सम्बन्ध में हीनता के भाव प्रकट करने वाला एक भी उदाहरण नहीं है। लेकिन इसके विपरीत यज्ञ करने वाले की यह कह कर प्रशंसा की गई है कि वे पुत्र पुत्रियों वाले पूर्णायु का उपभोग करें—

"पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः। ऋ० ८।३१।८

यदि किसी परिवार में पुत्रियाँ अधिक हो तो उसकी ऋग्वेद में निन्दा नहीं की गई है अपितु ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक उद्गार

प्रकट करते हुये कहा गया है—बहुत संख्या के बाणों को धारण करने वाले (इषुधि) की प्रशंसा, अनेक पुत्रियों के पिता कह कर की गई है।

"बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रः" ऋ० ६।७५।५

ऋग्वेद में पुत्री की प्रशंसा परोक्ष रूप में ही नहीं की गई है अपितु प्रत्यक्ष रूप में की गई है। पुत्री के लिये प्रशंसात्मक वाक्य का प्रयोग पुत्रों की अपेक्षा अधिक सम्मान जनक के साथ किया गया है

"मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट" ऋ० १०।१५६।३

मेरे पुत्र शत्रुओं का हनन करने वाले हैं और मेरी पुत्री विराट (शासिका) है।

पिता के पुत्र के प्रति करणीय कार्य

पिता के पुत्र के प्रति अनेक प्रकार के करणीय कार्य हो सकते हैं। जिनमें (१) रक्षण (२) भरण पोषण-पोषण और (३) शिक्षण ही मुख्य रूप से हो सकते हैं जो कि आज भी महत्वपूर्ण हैं। ऋग्वेद में इन करणीय कार्यों का अनेक ऋचाओं में उल्लेख हुआ है।

रक्षण—रक्षण के विषय में ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है विश्व देव की स्तुति करते हुये कहा गया है—

वयं तद्वः सम्राज आ वृणी महे पुत्रों न बहूपाय्यम्। ऋ० ८।२७।२२

पिता अपनी प्रिय सन्तान की जहाँ बाह्य शत्रुओं से रक्षा करता है वहाँ वह शारीरिक व्याधियों से भी रक्षण के लिये सावधान रहता है। ऋग्वेद में इन्द्र की स्तुति करते हुये कहा गया है—"हे इन्द्र तेरी स्तुति करने वाले को व्याधियाँ सता रही हैं, हे मघवन् तुम एक बार हमें आनन्दित करो हे इन्द्र तुम हमारे लिये पिता के समान बनो।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति मध्य स्तोतारं ते शतक्रतो।
सुकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृडयाधा पितेव नो भव॥

ऋ० १०।३३।३

ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा में कहा गया है—"जब समान दक्ष (प्रयत्न) वाले उत्साही (सबाधः) स्तोता जन इन्द्र को रक्षा के लिये इस प्रकार से पुकारते हैं।"

"यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समान दक्षा अवसे हवन्ते"—

ऋ० ७।२६।२

पिता के समान रक्षण के लिये द्यावा पृथिवी से भी प्रार्थना की गई है—हे द्यावा पृथिवी तुम पिता माता की गोद में बालक के समान आपत्तियों से रक्षा करें।"

"नित्यं न सूनुं पित्रोरूपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्"
ऋ० १०।१८५।२

पित्रोः रूपस्थे सूनुं नित्यं न—जिस प्रकार माता पिता की गोद में रहने वाले पुत्र की ये दोनों रक्षा करते है उसी तरह—**"द्यावा पृथिवी नः अभ्वात् रक्षतम्"** द्यावा पृथिवी हमारी आपत्तियों से रक्षा करें।

भरण पोषण—

ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से पिता के भरण पोषण का उल्लेख पाया जाता है जैसा कि ऋग्वेद के एक स्थल में पिता सन्तान के लिये भोज्य सामग्री जुटाने का उल्लेख हुआ है जिसमें इन्द्र के द्वारा प्रतिपादित कराया गया है—मैं धन का प्रथम स्वामी हूं, मैं शाश्वत् धन को जीतता हूँ मुझे सन्तान (प्राणी) पिता के समान पुकारते हैं मैं दान शील के लिये भोज्य पदार्थ वितरण करता हूं।"

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शाश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम्॥
ऋ० १०।४८।१

शिक्षण—

इस वसुन्धरा पर दो प्रकार का ज्ञान पाया जाता है एक स्वाभाविक ज्ञान और दूसरा नैमित्तिक ज्ञान। स्वाभाविक ज्ञान पशु पक्षियों में पाया जाता है और नैमित्तिक ज्ञान मनुष्य दूसरों से प्राप्त करता है। जो सीखने से उपलब्ध होता है।

ऋग्वेद सर्व गुण सम्पन्न पुत्र की कामना करते हुये सोम के सम्बन्ध में कहा गया है जो सोम को हव्य देता है सोम देव उसे धेनु देता है, शीघ्र गामी अश्व देता है, कर्मशील, गृहकार्य में दक्ष, सभा के योग्य, पिता के लिये यशो बर्धक पुत्र (वीर) प्रदान करता है।

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति। सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै॥ **ऋ० १।९१।२०**

(यः ददाशत्) जो सोम को हव्य प्रदान करता है, **अस्मै सोमः धेनुं ददाति)** उसके लिये सोम गाय देता है **(सोमः आशु अर्वन्तम्)** सोम वेगवान्

अश्व भी देता है (**कर्मण्यं विदथ्यं सादन्यं सभेयं पितृ श्रवणं वीरं ददाशत्**) कर्म-कुशल, प्रवीण, घर की दक्षता रखने वाला सभा में प्रमुख पिता का यश बढ़ाने वाला वीर पुत्र प्रदान करता है। इस ऋचा में जो सन्तान के गुण कहे गये हैं वे विना सिखाये नहीं आ सकते और इनके शिक्षक पिता ही हो सकते हैं परन्तु कभी-कभी किसी विषय में विशेषता प्रदान करने के लिये पुत्रों को अध्ययन करने के लिये किसी अन्य गुरु के पास भी भेजा जा सकता है जिसका संकेत हमें ऋग्वेद के मण्डूक सूक्त से उपलब्ध होता है—

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।

ऋ० ४।१०३।५

(**यत एषां अन्यः**) जब इनमें से एक मेंढ़क (**अन्यस्य वाचं वदति**) दूसरे के साथ बोलने लगता है (**शिक्षमाणः शाक्तस्य इव**) तब शिष्य गुरु के शब्द पुनः बोलने के समान प्रतीत होता है।

पिता के प्रति पुत्र के करणीय कार्य—

ऋग्वेद में उल्लिखित पुत्र सामान्यतया पिता का आज्ञाकारी, सेवा परायण, परोपकारी तथा वशवर्ती आदि होता है।

(१) आज्ञा पालन करना—

पिता की आज्ञा पालन करना पुत्र अपना परम कर्त्तव्य समझता है इसीलिये पुत्र पिता के वचन पालन करने के लिये सर्वदा उद्यत रहते हैं। ऋग्वेद में अग्नि की स्तुति करते हुये कहा गया है—अग्नि की आज्ञाओं को सुनने वाले उन्हें ऐसे ही शीघ्र पूरा कर लेते हैं जैसे कि आज्ञा पालक पुत्र पिता के वचनों का पालन करता है।"

पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्यं शासं तुरासः"

ऋ० १।६८।५

(**पितुः न पुत्राः**) पिता के आदेश मानने वाले पुत्रों के समान (**ये अस्य शासं**) वे इसकी आज्ञाओं को (**श्रोषन् तुरासः क्रतुं जुषन्तः**) सुनकर शीघ्र ही कर्म आरम्भ कर दिया।

उपकार करना—

माता पिता से उत्पन्न पुत्र यह अनुभव करता है कि माता-पिता ने हमको जन्म देकर और पालन पोषण आदि अनेकों कार्यों से हमको बड़ा करके अपने आप को वृद्ध एवं थका लिया है। हमारा भी उनके प्रति यह परम कर्त्तव्य है कि हम अपने माता पिता को अपने कार्यों से पुनः युवा बना दें ऋग्वेद में ऋभुओं की पुनः अपने माता पिता को युवा बनाने के कारण

प्रशंसा की गई है शोभन ऋभुओं ने अपने जीर्ण माता पिता को युवा बना लेने के कारण देवों में भी महिमा प्राप्त की है।

तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं विश्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ।।

ऋ० ४।३६।३

सेवाभाव—

पुत्र अपने पिता के लिये उत्तम भोजन छादन का भी प्रवन्ध करता है ऋग्वेद में इन्द्र की स्तुति करते हुये कहा गया है—सोम के साथ उत्तम अन्न वाले हम तुम्हें बलि होने के लिये पुकारते हैं, जिस प्रकार पितृ सेवक पुत्र पुकारता है।

हवामहे त्वा वयं प्रस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ।। ऋ० १।१३०।१

पिता के यश में वृद्धि करना

पिता के सभी सांसारिक कार्यों की वृद्धि करना और पिता के नाम को उज्जवल करना पुत्र का पुनीत कर्म माना गया है ऐसे कर्त्तव्य परायण पुत्रों की प्रशंसा भी होती है और उनकी कामना भी की जाती है जैसा कि सोम की स्तुति करते हुये कहा गया है—जो सोम की अर्चना करता है सोम उसे लौकिक कार्य दक्ष, गृह कार्य परायण, सभा द्वारा आदृत और पिता के यश में वृद्धि करने वाला पुत्र देता है। "**सोमो वीरं कर्मण्य ददाति ।**
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृ श्रवणं यो ददाशदस्मै ।।

ऋ० १।९१।२०

विनयी होना—

विनयशील पुत्र अपने माता पिता से उन्नति के लिये आशीर्वाद प्राप्त करते समय अभिवादन अवश्य करता है ऋग्वेद में रुद्रों की स्तुति करते हुये कहा गया है जैसे आशीर्वाद देते समय पिता को पुत्र अभिवादन करता है वैसे हीं हे रुद्रो तुम्हारे आने पर हम तुम्हें अभिवादन करते है।

कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्

ऋ० २।३३।१२

पिता के अपमान का बदला लेना

पिता के अपमान एवं वधादि का प्रतिशोध भी पुत्र का कार्य है। पिता के साथ शत्रुता समझने वाले को पुत्र भी अपना शत्रु समझता है। ऋग्वेद में इन्द्र के विषय में कहा गया है बलशाली इन्द्र जिसके माता पिता और भाई का वध करता है उससे भी कभी भी भयभीत नहीं होता है।

यस्यावधीत् पितरं मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।

ऋ० ५।३४।४

पाप मुक्त एवं ऋण मुक्त करना

पुत्र पिता के पापों से भी मुक्ति दिलाता है तथा अपने पाप कर्मों के लिये देवों से प्रार्थना करता है—जो पाप हमारे पिता ने किये तथा जो हमने स्वयं किये हैं, उनसे हमको मुक्त करो—"**अव द्रुग्धानि पित्र्या सृज नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः ॥** ऋ० ७।८६।५

पुत्र को पिता के ऋणों को उतारने वाला भी होना चाहिये जिससे पिता एवं पुत्र सुख से रह सकें। ऋग्वेद में पुत्र को ऋण चुकाने वाला कहा गया है—

"**इयमददाद् रभसमृणच्युतं दिवोदासम्**" ऋ० ६।६१।१

"**रभसं ऋणच्युतं दिवोदासम् अददात्**"—धैर्य वान, ऋण चुकाने वाला दिवोदास नामक पुत्र प्रदान किया।

पैतृक परम्पराओं की रक्षा करना

प्रपिता पितामह आदि के द्वारा चलाई गई परम्पराओं की रक्षा करना भी पुत्र का कार्य होता हैं जिससे परम्परायें अक्षुण्य रह सकें। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में कहा गया है देव हमें पैतृक मार्ग से दूर न करें।

"**मानः पथ पित्र्यान्मान्वादधि दूरं नैष्ट परावतः ।** ऋ० ८।३०।३

निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि ऋग्वेद में आदर्श रूप में परिवार के स्वरूप का उल्लेख हुआ है। जिसका अति संक्षेप में वर्णन किया गया है। इस प्रकार अन्य परिवार जनों के सम्बन्ध में भी लिखा जा सकता है परन्तु समयाभाव के कारण पिता-पुत्र पर ही कुछ लिख पाया हूँ। आगे कभी प्रभु कृपा हुई तो विशेष रूप से परिवार के सभी घटको के विषय में करूगा।

वैदिक साहित्य में नारी और उसकी स्वतंत्रता

—डाँ० प्रशान्त वेदालंकार
७१२, रूपनगर, दिल्ली—११०००७

वेद के अनुसार नारी का कार्यक्षेत्र पुरुष से सर्वथा भिन्न है। वह घर की सम्राज्ञी है। उसी साम्राज्य की उन्नति करना ही उसके जीवन का परम लक्ष्य है। गृह एक व्यष्टि है उसकी उन्नति से पूर्ण नगर की और प्रत्येक नगर की उन्नति से सम्पूर्ण राष्ट्र रूपी समष्टि की उन्नति सम्भव है। इस प्रकार अन्ततः नारी ही देश का आधार सिद्ध होती है। वह माता बनकर पुरुष का निर्माण करती है। उसके कर्त्तव्य की पूर्ति आदर्श सन्तान की जननी बनकर उसे सम्पूर्ण सांसारिक सफलताओं के रहस्य को समझा कर कर्मक्षेत्र से संघर्ष करने के लिये तैयार करके बाहर भेजने में निहित है। उसके बिना पुरुष की और उससे सम्पूर्ण समाज की प्रगति सर्वथा असम्भव है। मातृसुख-विहीन बालक प्रायः आवारा, निष्कर्मण्य और असफल ही दृष्टिगोचर होते हैं। पत्नी के बिना पुरुष की प्रतिष्ठा और सम्मान नगण्य है। इन्हीं सब कारणों से वेद नें पत्नी को घर का कार्य सौंपा है। यदि वह चाहे तो घर (परिवार) समाज और राष्ट्र को स्वर्ग बना सकती है और चाहे तो नरक। वह जैसा घर का निर्माण करेगी वैसा ही सम्पूर्ण समाज का ढांचा बदल जायेगा। घर की समुचित देखभाल के लिये ही मनु ने उसे सारे जीवन भर धन कमाने की चिन्ताओं से मुक्त रखा है।[1]

१. मनु० ५।१४८

वेद के इस उच्च आदर्श को न समझ सकने के कारण कुछ लोग नारी को गृह व्यवस्था का भार सोंपने का अर्थ उसका असामर्थ्य मानते हैं। उनके विचार में नारी बाहर समाज में खुले रूप से रहने में असमर्थ है। उसे पिता पति और पुत्र के कमाये धन पर निर्भर रखने का अर्थ यह है कि वह धन कमाने के अयोग्य है। घर की चारदीवारी में बन्द रहने के अतिरिक्त उसका बाहर निकलना सर्वथा दूभर है। पर वस्तुतः वे वेद के सच्चे अभिप्राय को समझने में असमर्थ रहे हैं। इतिहास साक्षी है कि जब-जब स्त्री को भली प्रकार शिक्षित करके घर की सम्पूर्ण व्यवस्था नहीं सौंपी गयी तब-तब समाज का पतन हुआ है। बिना व्यष्टि की उन्नति के समष्टि की उन्नति की कल्पना करना व्यर्थ है। यदि नारी भी पुरुष की भाँति घर से बाहर के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाये, पुरुष की ही भाँति घूम घूमकर धन संजय करे, जीवन के विविध युद्धों से संघर्ष करने में तत्पर रहे तो समाज रूपी गाड़ी के दोनों पहियों का कल्मषता के पंक में फंस जाने का खतरा है। परिणामस्वरूप मानव-समाज की नींव जो कि शैशवावस्था में माता ही तैयार करने में समर्थ है, कच्ची रह जायेगी, पत्नी पति को भी कभी सन्मार्ग पर प्रेरित करने मे समर्थ न होगी। वस्तुतः वेद उसे घर का काम सौंप कर उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण करने का इच्छुक नहीं है। वह तो आपत्काल में आवश्यकता पड़ने पर, उसे बाहर के क्षेत्र में कूच करने की पूरी स्वतन्त्रता प्रदान करता है, तब वह उस जीवन-संघर्ष में पुरुषों को भी मात करने में समर्थ सिद्ध होती हैं। अथर्ववेद के १४वें काण्ड में उसे गौ की भाँति कहा गया है। उसे गौ की भाँति दया, सरलता, ममता और प्रेम का सदन बनाया है। किन्तु जब उस सरल स्वभाव गौ को कोई तंग करता है तो वह 'मरखनी' होकर उसे मार भगाने में समर्थ सिद्ध होती है। नारी भी अपने को सताया जाता देख कर अत्याचारी के प्रति भयानक रूप धारण कर लेने में समर्थ है। उसमें वीरता की तीव्र भावना है। वह राजनीति की कुशल खिलाड़ी है। उसका घर में रहना उसके कर्त्तव्य का सूचक है उसकी दासता का नहीं। शुद्ध व्यवहार के लिये उसे परदा-प्रथा से दूर रखा गया है। वह सभाओं में भाग ले सकती है। अध्यापन-कर्म करने में समर्थ है। वेद की इस भावना को यहाँ सप्रमाण प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. परदा प्रथा का विरोध तथा सभाओं में भाग लेना

विवाह के उपरान्त वर अपनी वधू के लिये कहता है—यह मंगल

बढ़ाने वाली वधू हमारे घर में आई है, आओ इसे देखें।[1] कन्या विवाह करके पहले-पहले घर में आयी है। अब लोग उसे देखने पहुंचे हैं और लोगों को कहा जा रहा है कि आओ और हमारी वधू को देखो। इससे यह स्पष्ट होता है कि कन्या ने परदा नहीं कर रखा है। अथर्ववेद के अनुसार उसे देखने के लिये युवतियाँ और अनेक वृद्ध मातायें एकत्रित हैं।[2] ज्यों ही उसने ग्राम में प्रवेश किया त्यों ही अनेक वृद्ध पुरुष उसका स्वागत करने के निमित वहां आ गये। उन्हें देखकर वर के पिता ने कहा कि जो पितर (बुजुर्ग) वधू के दर्शन के निमित इस वधू के रथ के समीप आये हैं वे पति की संगिनी इस वधू के लिये प्रजा के सुख का आशीर्वाद दें।[3] स्पष्ट है कि वेद परदे की कुप्रथा से असहमत है। यदि वेद को परदे का विधान अभीष्ट होता तो बुजुर्गों का वधू के दर्शन के निमित आना और उन्हें वर के पिता द्वारा रथ के समीप बुलाकर आशीर्वाद दिलाने का उल्लेख न होता।

वेद के अनुसार कन्या को स्वयं अपने पति का चुनाव करने का अधिकार प्राप्त है।[4] ऐतरेय ब्राह्मण में स्वयम्बर-प्रथा का उल्लेख विद्यमान है।[5] सायण ने स्वयम्बर से संबंधित एक कहानी कल्पित की है।[6] इन सब से यही सूचित होता है कि नारी पर परदे का कोई बन्धन नहीं हैं।

इस के अतिरिक्त वेद में इस बात के अनेक प्रमाण विद्यमान है जिन से यह सिद्ध होता है कि स्त्रियों को सभाओं में जाने और वहां जाकर अपने विचारों को व्यक्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। ऋग्वेद की एक उपमा से यह स्पष्ट होता है कि नारियां सभाओं में भाग लेने में स्वतन्त्र हैं।[7] वह मनुष्यों की सभाओं में जाकर उनके साथ बैठ

---

१. सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। अथर्व० १४।२।२८

२. अथर्व० १४।२।२९

३. ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमत्।

ते अस्यै वध्वै सम्पत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ अथर्व० १४।२।७३

४. ऋग्वेद १०।२७।१२

५. ऐत० ब्रा० ४।७

६. ऋग्वेद १।११६।१ के आधार पर।

७. ऋग्वेद १।१२४।८

करके भाषण दे सकती है।[1] वैदिक पुरुष उससे प्रार्थना करता है कि तू ज्ञानभरी वक्तृता दिया कर।[2] मनु का कथन है कि नारियाँ बिना किसी रोक-टोक के सभी प्रकार के उत्सवों में भाग ले सकती हैं, और उनमें पुरुष उनका सम्मान करते हैं।[3] ऐतरेय ब्राह्मण के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कुमारी गन्धर्वगृहीता एक अच्छी वक्त्री थी, उसे अध्यात्मविद्या-सम्बन्धी विषय पर विद्वानों की सभा में भाषण देने को कहा गया।[4] बृहदारण्यक उपनिषद् में जनक की सभा में गार्गी दर्शन और तत्सम्बन्धी विषयों पर याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करती है। सूत्रग्रन्थों के अनुसार विदुषी नारियाँ विद्यालयों में अध्यापन कार्य सम्पन्न कर सकती हैं। महर्षि बौधायन एवं आपस्तम्ब ने अनेक आचार्याओं का उल्लेख किया है।[5] यह इस बात का प्रमाण है कि नारी को विद्यालयों में जाकर पढ़ाने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। ये सभी तथ्य उसकी स्वतन्त्रता के द्योतक हैं।

कुछ पाश्चात्य तथा उनके अनुकरण पर भारतीय विचारकों ने भी वैदिक काल में 'समन' नाम के उत्सव की कल्पना की है। उनके मत में उस काल में स्त्री समन' तथा ऐसे अन्य उत्सवों में सम्मिलित होने के लिये अलंकृत तथा प्रसन्नवदन होकर जाती थी।[6] ऋग्वेद में इस बात का अनेक बार उल्लेख हुआ है।[7] 'समन' का आकर्षण सामान्यतया अश्वों और रथों की दौड़ होती थी, परन्तु यह 'समन' विवाह-योग्य अवस्था के युवा और युवतियों को विवाह का साथी चुनने में भी बड़े सहायक सिद्ध होते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार अविवाहिता कन्यायें (अग्रवः) अपने योग्य युवकों को आकर्षित करने के लिये सुन्दर वस्त्र तथा अलंकार धारण करके 'समन' में जाती थी।[8] युवतियों के इस कार्य से घर के बड़े लोग असन्तुष्ट नहीं होते थे, प्रत्युत माताये अपनी पुत्रियों को अलंकृत

---

१. गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव संवाक्। ऋ० १।१६७।३

२. विदथमा वदासि। अथर्व० १४।१।२१

३. मनु० ३।५९

४. ऐत ब्रा० ५।१।४

५. बौधा० २।१।२।२१, आप० १।७।१३।९

६. अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्
ऋ० ४।५८।८

७. ऋ० १।४८।६, १।२४।८, ७।२।५, ६।४, १०।८६।१०

८. पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समगुवो न समनेष्व, जन् ऋ० ७।२।५

करके 'समन' में जाने के लिये उत्साहित करती थीं।[9] अविवाहित कन्याओं के प्रेमी (जार)[10] होते थे,[11] और वह अपने प्रेमी से संकेत स्थान में मिलती थी।[1] डॉ० भगवतशरण उपाध्याय का मत है कि कभी-कभी तो ऋग्वैदिक कन्यायें इतना साहस करती थीं कि वे अपने प्रेमियों का स्वागत भी करती थीं।[2] विवाहिता युवती स्त्रियां भी नये वस्त्र धारण करके तथा प्रसाधन करके मुस्कुराती हुई मेलों का आनन्द लेने जातीं थीं। सूर्य की रश्मियों से भासित उषा को 'समन' में जाने वाली स्त्रियों (व्राः) के समान अलंकार धारण करने वाली कहा गया है।[3] इसी प्रकार वायु के पीछे आने वाले जलों की भी समन में जाने वाली स्त्रियों से उपमा दी गयी है।[4] कुछ भारतीय विचारक समन का अर्थ युद्ध लेकर उपर्युक्त स्थलों की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। हम समन शब्द के अर्थ के विवाद में न उलझकर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि इन स्थलों से नारी की स्वतन्त्रता अवश्य सूचित होती है।

२. नारी की वीरता

ऋग्वेद में कुछ स्त्रियों द्वारा सैनिक शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख विद्यमान है। विश्पला और मुद्गलानी ने युद्ध में भाग लिया था।[5]

---

९. सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषा विस्तन्वं कृणुषे दृशे कम्।
ऋ० १।१२३।११

१०. ऋग्वेद में 'जार' शब्द का अर्थ अपति न होकर प्रेमी है।

११. अभि गावो अनुषत योषा जारमिव प्रियम्। ऋ० ९।३२।५

१. (क) युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा।
ऋ० १०।४०।६

(ख) न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतं एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव।
ऋ० १०।३४।५

२. वीमैन इन ऋग्वेद (१९४१ में प्रकाशित), पृ० ४०
(ऋ० १।१३४।३ के आधार पर)

३. व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः।
ऋ० १।१२४।८

४. सम्प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा एनं गच्छन्ति समनं न योषाः।
ऋ० १०।१६८।२

५. ऋग्वेद १।११२।१०, ११६।१५, १०।१०२।२, ३

अनार्यों (दासों) की स्त्रियों की एक सेना का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[6] एक अनार्या स्त्री को अपने पुत्र की रक्षा करती हुई चित्रित किया गया है, जिसका इन्द्र ने वध किया था।[7]

नारी को संग्राम में भी पुरुष के साथ जाने की प्रेरणा प्रदान की गयी है,[8] तभी वीर स्वामी की स्त्री और वीर पुत्रों की माता, न्यायाचरण का पालन करने वाली, पति से प्राप्त वीर्य रूप तेज की पुत्र रूप में निर्माण करने वाली वीरनारी होकर सर्वोत्तम पूजा व आदर को प्राप्त होती है।[9] अश्वों की सेना से युक्त संग्रामनेत्री स्त्री विधिव प्रकारों से संग्रामों की ओर पदार्पण करती है। युद्ध-कुशला स्त्री अर्थ-नीति में कुशल युधार्थी शत्रुओं को परास्त करके, वेश को रक्त से गीला करती हुई और आगे बढ़ जाती है। उसके शत्रु ठहर नहीं पाते।[1] निरन्तर युद्धों में चमकती हुई व‍ह आगे ही बढ़ती जाती है। वह इन्द्राणी अर्थात् सेनापत्नी है।[2] वह अजेया है। वह 'घोरा:' अर्थात् बलवान् शत्रुओं के लिये भयंकर है।[3] वह शूरवीर की पत्नी है। कसी से दबने वाली नहीं है। वह स्वयं उद्घोष करती है—मैं शत्रु-रहित हूं। यदि कोई शत्रु आता है तो उसका संहार करने वाली हूं। मैं विजयिनी हूं। शत्रुओं को परास्त करने वाली हूँ। मैंने शत्रु-सेनाओं के तेज और ऐश्वर्य को विच्छिन्न कर दिया है।[4] पराजित कर सकने वाली मैंने इन शत्रु-सेनाओं को भली

---

६. स्त्रियों हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः।
ऋ० ५।१०।६

७. उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः।
ऋ० १।३२।६

८. ऋग्वेद १।११६।१

९. सं होत्रं स्म पुरा नारी समनं बाव गच्छति
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥
ऋ० १०।८६।१०

१. वि या सृजति समनं व्यथिनः पदं न वेत्योदती।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टी वाजिनीवति। 	ऋ० १।४८।६

२. इन्द्राणी वे सेनाया देवता। तैतिरीय सं० २।२।८।१

३. ऋग्वेद १।१६७।४

४. असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव॥ 	ऋ० १०।१५९।५

प्रकार जीत लिया है, जिससे कि मैं अपने पति और अन्य जनों की दृष्टि में विशेष तेजस्विनी समझी जाऊं।[5]

वैदिक नारी की इन ओजपूर्ण प्रतिज्ञाओं और संकल्पों के सामने कौन नारी को अबला कहने का दुस्साहस करेगा। वैदिक नारी का विचार और उसका दृढ़ संकल्प उसे दुष्टों से सदा सुरक्षित रखता है। ऋग्वेद के अनुसार नारी युद्ध में सशस्त्र जाने की इच्छा प्रकट करती है।[6] एक अन्य ऋचा में 'स्त्रियां जिस प्रकार युद्ध को जाती है'[7] इस उपमा द्वारा उसकी सामर्थ्य-भावना व्यक्त की गयी है। उसमें दृढ़ विश्वास है। वह वीर-भावना से ओत-प्रोत होकर कहती है—यह पुरुष मुझे अबला ही मानता है, किन्तु मैं अपने को प्रेरणा देने वाले वीर को वरने वाली स्त्री के तुल्य हूं। मैं भी उसी ऐश्वर्यवान् परमात्मा को धारण करती हूं, और मैं विश्व का संचालन करने वाले शक्तिशाली वायु के समान अनेक बलों से युक्त एवं शक्ति-सम्पन्न हूं।[8]

३. नारी और राजनीति

अथर्ववेद के अनुसार नारी को राज्य-सभा में जाकर अपने विचारों को व्यक्त करने का पूरा अधिकार प्राप्त है।[9] यजुर्वेद में उनका राज्य-संचालन की प्रमुख सभाओं में चुनकर जाने का उल्लेख है।[1] मनु ने राजा को निर्देश दिया है कि वह राज्य-शासन में योग्यता, गुण और कर्म

---

५. समजैष मिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च॥ ऋ० १०।१५९।६

६. ऋग्वेद ५।३०।९

७. गच्छन्ति समनं न योषाः। ऋ० १०।१६८।२

८. अवीरामिव मामयं शरारुमिमन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।
ऋ० १०।८६।९

९. (क) अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद। अथर्व० ७।३८।४
(ख) यदक्षेषु वदायुत्समित्यां यद्वा वदा अनृतं वितकाम्या।
अथर्व० १२।३।५२

१. यजु० २०।१।१० विशेषतः नवम मन्त्र में स्त्री के अंगों का परिगणन किया गया है, शेष मन्त्रों में पुरुष के अंगों का उल्लेख है। इस मन्त्र में स्त्री के अंग का वर्णन करके यह स्पष्ट संकेत दे दिया है कि स्त्री भी राजा चुनी जा सकती है।

के अनुसार अच्छे श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषों को बलि (वेतन) देकर सभी पदों पर नियुक्त करे।[2] इस प्रकार वेद के अनुसार नारी को राजनीति में भाग लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है।

ऋग्वेद में 'सरमा-पणि सम्वाद' उपलब्ध होता है। सरमा एक नारी है जो कि इन्द्र की आज्ञा से पणियों के पास सन्धि का प्रस्ताव लेकर जाती है। पणि लोग चोर, डाकू और लुटेरे हैं। वह उनके मध्य जाकर अपनी वक्तृता से उनको प्रभावित करती है। उधर पणि उसे अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करते हैं, उसे नानाविध प्रलोभन देते हैं। किन्तु सरमा अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होती। अन्त में वह अपने कार्य में सफलता प्राप्त करने में समर्थ सिद्ध हो जाती है, और उन्हें सन्धि का प्रस्ताव मान लेने के लिये तैयार कर लेती है।[3] इस प्रकार नारी दौत्यकर्म करने में भी समर्थ है।

इस प्रकार इस सम्पूर्ण उल्लेख से यह बात सर्वथा स्पष्ट है कि नारी में सभी प्रकार के कार्य करने की योग्यता विद्यमान है। वह जो चाहे बन सकती है, कर सकती है। ऑफिसों की कुर्सियों, न्यायाधीशों के मचों और राष्ट्रपति के सिंहासनों पर पदारूढ़ होने में वह सर्वथा सक्षम है। वह सेना या पुलिस की सिपाही, उपदेशक, अध्यापक या व्याख्याता बन सकती है। आज की परिस्थितियाँ यदि उससे उक्त सभी कर्म अथवा व्यवसाय करवाने को बाध्य करती है तो वेद का उससे कोई विरोध नहीं। किन्तु वैदिक साहित्य व्यक्तिगत उन्नति से समष्टिगत उन्नति के सिद्धान्त को स्वीकार करता है। उसके अनुसार गृह की उन्नति से राष्ट्र की उन्नति होनी सम्भव है। उसने नारी को इस घर की सम्राज्ञी बनाकर प्रकारान्तर से विश्व का शासन-सूत्र उसी के हाथ में सौंप दिया है। वेद की मान्यता है कि गृह की व्याख्या अथवा परिवार को सुखी रखने के कार्य में कुछ सूक्ष्मतायें हैं जिन्हें नारी समझ सकती है पुरुष नहीं। अपने शिशु को पूर्ण योग्य बनाने की क्षमता मां में विद्यमान है पिता में नहीं। नारी घर में

---

२. राजा कर्मसु युवतानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च।
प्रत्यहं कल्पयेद वृत्ति स्थानकर्मानुरूपतः॥ मनु० ७।१२५

३. ऋग्वेद १०।१०८ (सम्पूर्ण सूक्त)

रहकर बाहर की सभी कलमषताओं से बची रहती है, और घर में ही रहकर अपने पति अथवा पुत्र को ऐसे निर्देश देती है कि वे भी बाहर जाकर किसी पापपूर्ण कर्म में प्रवृत्त न हों। वह घर को स्वर्ग बनाकर परोक्ष रूप से सम्पूर्ण समाज राष्ट्र अथवा विश्व को स्वर्ग बनाने में समर्थ सिद्ध हो सकती है। नारी मानव समाज की उन्नति के लिये अनिवार्य अंग है, यदि वेद के इस दृष्टिकोण को समझ कर नारी को घर की व्यवस्था का भार सोंप कर हम उसका पूर्ण सम्मान कर सकें, और घर का कार्य सोंपने का अर्थ उसमें बाहर का काम करने की अयोग्यता न मानें तो मानव-समाज अधिक सुखी रह सकेगा। मानव-समाज की सुख-समृद्धि शान्ति अथवा उन्नति का यही एक मार्ग है।

ऋग्वैदिक युग में परिवारिक जीवन का विकास एवं पारिवारिक कर्तव्य

—डॉ० कृष्ण कुमार

ऋग्वेद संहिता में परिवार के सम्पूर्ण संगठन के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। प्रभु ने मनुष्य को विवाह करके परिवार का प्रारम्भ करने तथा परिवार के सभी सदस्यों के साथ प्रेम पूर्वक मिलकर रहने का उपदेश दिया था। मनुष्य के घर का निर्माण तभी होता है, जब पत्नी घर में आती है। अत: पत्नी को ही घर कहा गया और वह घर में आकर सन्तान की उत्पत्ति का कारण होती है—

जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्वा युक्ताहरयो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥[1]

हे मघवन् पत्नी ही निश्चय से घर है। वह ही सन्तान का कारण होती है। तुमको जुते हुये घोड़े बहन करें। जब कभी भी हम सोम का अभिषय करे, अग्नि के समान शत्रुओं को तपाने वाले तुमको अच्छी प्रकार प्राप्त करें।

महाभारत के आदि पर्व[2] में दीर्घतमा की एक कथा के आधार पर कहा जाता है कि पहले समय में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में कामाचार था। विवाह अथवा मैथुन के सम्बन्ध में स्त्री-पुरुषों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। कथा प्रसिद्ध है कि उतथ्य के पुत्र दीर्घतमा ने प्रद्वेषी से कई सन्तानें उत्पन्न कीं। तदनन्तर वह अन्य स्त्रियों से भी सन्तानें उत्पन्न करने लगा।

---

१. ऋग्वेद ३।५३।४॥
२. महाभारत आदि पर्व ॥

असन्तुष्ट होकर प्रद्वेसी ने दीर्घतम को त्यागने का निश्चय किया। इससे ऋषियों में बेचैनी उत्पन्न हुई। उन्होने व्यवस्था दी कि नारी के लिये आजीवन एक ही पति होगा। पति के जीवित रहते अथवा मरने पर भी नारी अन्य किसी का पुरुष सम्पर्क नहीं करेगा। रुष्ट होकर प्रद्वेसी ने दीर्घतमा को अपने पुत्रों की सहायता से गङ्गा में फिंकवा दिया।

परन्तु महाभारतकार ने अपने समय में प्रचलित अनेक परम्पराओं का उल्लेख मात्र किया है। आवश्यक नहीं कि वह इन सबको वेदविहित मानता हो। उसने अन्य स्थानों पर दीर्घतमा को वितथमर्याद कहकर दीर्घतमा की निन्दा की है। महाभारत तथा अन्य प्राचीन साहित्य में पतिव्रत्य की महिमा का गान किया गया है तथा अन्य पुरुष को मन में भी लाने वाली स्त्री की निन्दा की है। वैदिक युग में कामाचार की परम्परा कभी नहीं रही। युवक युवतियों को जीवन-साथी चुनने की स्वतन्त्रता थी विवाह के पश्चात् कन्या वधू बनकर पति के घर आकर गृहिणी के कर्त्तव्य का पालन करती थी। उसको आशीर्वाद दिया जाता था कि गृहस्थ में रहते हुये वह पति से कभी भी अलग न हो और पूरी आयु को प्राप्त करें।[1] वैदिक विवाह में वर वधू से कहता है कि मुझ पति से सन्तानवती होकर तू मेरे साथ सौ वर्ष तक जीवित रह।[2]

वैदिक साहित्य में, विशेष रूप से ऋग्वेद संहितामें पत्नी को बहुत महत्व दिया गया है। सौभाग्य को प्राप्त करने के लिये पुरुष स्त्री के हाथ को ग्रहण करता है तथा वृद्धावस्था तक उसको साथ रखने की कामना करता है। भग, अर्यमा, सविता आदि देवता गृहस्थ सम्पादन के लिये उस पत्नी को पुरुष के लिये देते हैं।[2] सोम नामक पुरुष के लिये सविता ने सूर्या को दिया था। उस समय दोनों अश्विनी देवता उसको वरण करना चाहते थे। परन्तु सूर्या सोम की ही कामना करती थी।[3] सूर्या का साम

---

१. इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्ती पुत्रैर्नप्तृभि र्मोदमानौ स्वे गृहे॥ ऋग्वेद १०।८५।४२॥

२. ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् वृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्॥ अथर्व० १४।१।५२॥

३. गृम्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥
ऋग्वेद १०।८५।३६॥ अथर्व० १४।१।५०॥

के घर भेजा गया। उस समय सभी उपस्थित जनों से कहा गया कि यह शुभ चिह्नों से युक्त वधू है। आप सब आइये और इसको देखिये। इसको सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दीजिये और अपने घर लौट जाइये।[4] यह विवाह सम्बन्ध अग्नि को साक्षी करके किया जाता था। आयु और तेज के साथ अग्नि ही पत्नी को पति के लिये प्रदान करता है। इस पत्नी का यह पति दीर्घायु होता है और सौ वर्ष तक जीवित रहता है।[5] पति के घर आने वाली पत्नी को आशीर्वाद मिलता है कि वह सास, ससुर, ननद और देवरों पर शासन करें।[1]

परिवार में रहकर गृहस्थ आश्रम में रहते हुये पति के अनेक कार्य प्रतिपादित किये गये थे। पत्नी की सहायता से ही पति धार्मिक कार्यों का, यज्ञों का निर्वाह करता है। वह पत्नी के साथ रति सुख का आनन्द लेता है और सन्तान को उत्पन्न करके वंश परम्परा को आगे बढ़ाता है। मनु का कथन है कि पारिवारिक जीवन के तोन उद्देश्य हैं—रति सुख, पुत्र को प्राप्त करना और धर्म का पालन करना।[2] इसके साथ ही वह अपने परिवार का पालन करता है तथा उनकी सुख सुविधा के लिये धनोपार्जन भी अनिवार्य है। इस दृष्टि से गृहस्थ पुरुष के चार कर्त्तव्य हैं—

१. धार्मिक कार्य
२. रति
३. सन्तान
४. धनोपार्जन

धार्मिक कार्य—

पुरुष विवाह इसीलिये करना है कि पत्नी के साथ मिलकर वह धार्मिक कार्यों को सम्पन्न कर सके। धार्मिक कार्यों के अन्तर्गत मुख्य रूप

---

४. सुमङ्गलीरियं वधू रिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं विपरेतन॥
ऋग्वेद १०।८५।३३ अथर्व० १४।२।२८॥

५. पुनः पत्नीमग्निरददादयुषा सहवर्चसा।
दीर्घायुरस्या यः पति र्जीवाति शरद; शतम्॥
ऋग्वेद १०।८५।३९॥अथर्व १४।२।२॥

१. सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वांभव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेव्यृषु॥ ऋग्वेद १०।८५।५६॥
समृस्येधिश्वसुरे सम्राज्युत देव्यृषु।
ननान्दुः सम्रास्येधि सम्राज्युत श्वश्रवाः॥ अथर्व० १४।१।४४॥

से यज्ञों का ग्रहण किया गया है। वैदिक विवाह पद्धति के अवसर पर अनेक देवताओं से जोकि परम प्रभु परमात्मा की ही विशेषतायें है, वर वधू के लिये प्रार्थनायें की जाती हैं। इन्द्र, अग्नि, पूजा, सोम, भग, अदिति, वरुण, सविता, अर्यमा, पुरन्धि, अश्विनी चन्द्र सूर्य, ब्रह्मा आदि देवता इनको विविध सुख और समृद्धि प्रदान करते हैं। अतः यज्ञ एवं श्रेष्ठ कार्यों द्वारा देवताओं की आराधना करना गृहस्थ का कर्त्तव्य है। ऋग्वेद में कहा गया है कि यज्ञ में उपासित तथा आगत देव उन बधुओं को यहाँ लाये।[3] अथर्ववेद में भी देवताओं के प्रति यज्ञ करने का विधान गृहस्थ के लिये किया गया है। पति को प्राप्त कराने वाले अर्यमा के प्रति यज्ञ किया जाता है।[4] सविता देवता इनकी आयु को दीर्घ करता है।

वैदिक मन्त्रों के व्याख्याओं के रूप में उत्तर काल में ब्राह्मण, सूत्र ग्रन्थ, स्मृति ग्रन्थ आदि में यज्ञों की विस्तृत व्याख्यायें की गई। वैदिक कर्म के तीन अवान्तर प्रकारों का--निर्देश किया गया—

पाकयज्ञसंस्था औपासन, होम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिक श्राद्ध, शूतगव।

हविर्यज्ञसंस्था-अग्निहोत्र, दर्शपूर्ण मास आग्रायण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणी, पितृपिण्ड यज्ञादिक दर्विहोम।

सोमसंस्था—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र आप्तोर्याम।

ब्राह्मण, सूत्र तथा स्मृति शास्त्रों में वेदमन्त्रों के आधार पर ही पंच महायज्ञों का विधान गृहस्थ के लिये हुआ। शतपथ ब्राह्मण,[2] तैत्तिरीय आरण्यक[3], आपस्तम्बधर्मसूत्र,[4] बौधायनधर्मसूत्र,[5] गोभिल

---

२. अपत्यं धर्मकार्याणी सुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधोना ॥ मनुस्मृति ९।२८॥

३. पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥ १०।८५।३३।।ऋग्वेद।।

४. अर्यमणं यजामहे सुबन्धु पतिदेवनम् ॥ अथर्ववेद १४।१।३३

१. दीर्घंत आयुः सविता कृणोतु ॥ अथर्ववेद १४।१।४७।।

२. शतपथ ब्राह्मण ११।५।३।१।।

३. तैतिरीय आरण्यक २।१०:

४. आपस्तम्व धर्मसूत्र १।४।१२।१३।।

५. बौधायन धर्मसूत्र २।६।१।८।।

स्मृति[1], मनुस्मृति[2] आदि में इनका विस्तृत वर्णन है। इन का मूल उद्देश्य है कि भगवान् के प्रति भक्ति हो, स्वाध्याय हो, ऋषियों तथा पितरों के प्रति श्रद्धा व्यक्त हो, मनुष्य तथा जीव मात्र के प्रति करुणा, दया और उदारता प्रकट हो पांच महायज्ञों से मानव शरीर विविध मलिनताओं से मुक्त होकर निर्मल हो जाता है।[3] इन पांच महायज्ञों का संक्षिप्त परिचय देना उचित होगा। मनु ने अध्यापन को ब्रह्मयज्ञ, तर्पण को पितृयज्ञ, होम को देवयज्ञ, बलि को भूतयज्ञ और अतिथि सेवा को नृयज्ञ कहा हैं।[4]

ब्रह्म यज्ञ—

ब्रह्मयज्ञ का मूल अभिप्राय अध्ययन-अध्यापन हो शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय को ब्रह्मयज्ञ कहा गया है।[5] ऋषि दयानन्द सन्ध्योपासना को ब्रह्म यज्ञ कहते हैं। प्राचीन गुरुकुलों में आचार्य शिष्यों को वेद-वेदाङ्गों की शिक्षा देते थे। वे निरन्तर अध्ययन अध्यापन, स्वाध्याय में निरत रहते थे। ब्रह्मयज्ञ के लिये वे शिष्यों की कामना करते थे। वेदों के साथ ही अन्य विषयों का अध्यापन भी होता था। कालान्तर में वेदाध्यापन के साथ सन्ध्योपासना, ईश्वरस्तुति आदि ब्रह्मयज्ञ के अग हो गये। गायत्री मन्त्र का पाठ इसका प्रतीक हो गया।

देव यज्ञ—

विभिन्न देवताओं के प्रति स्वाहा की ध्वनि के साथ आहुति देना देवयज्ञ है।[6] मनु ने अग्नि होत्र को देवयज्ञ कहा है। ऋषि दयानन्द भी अग्नि होत्र को देवयज्ञ कहते है। अग्नि होत्र कई प्रकार के रहे। दैनिक

---

१. गोभिल स्मृति २।२६॥

२. मनुस्मृति ३।६७॥

३. पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्लीपेजण्युयस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च वध्यते यास्तु वारयन्॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्पर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ताः महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥ मनु० ३।६८।६९॥

४. अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिभातो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ मनु० ३।७०॥

५. शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।३-८॥

६. यदग्नौ जुहोत्यपि समिधं तद्देवयज्ञः सन्तिष्टते॥
तैत्तिरीय आरण्यक २।१०॥

हवन के अतिरिक्त कुछ हवन सप्ताहों, महीनों और वर्षों तक चलते थे। परन्तु सामान्य गृहस्थ जन अन्य अवधि के यज्ञों को नहीं करते थे। वे दैनिक होत्र करते हैं। मनु का कथन है कि विधि पूर्वक अग्नि में डाली गई आहुति सूर्य को प्राप्त करती है। सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजायें होती हैं।[1]

पितृ यज्ञ—

पितरों का तर्पण करना पितृ यज्ञ ऋषि दयानन्द ने पितृयज्ञ के दो भेद किये हैं—तर्पण और श्राद्ध। जिन कर्मों के द्वारा विद्वज्जन, देवता, ऋषि और पितर तृप्त होते हैं, वह पितृ यज्ञ है। श्रद्धा के साथ उनकी जो सेवा की जाती है, वह श्राद्ध है। ऋग्वेद में पितृयज्ञ का प्रत्यक्ष उल्लेख तो नहीं है, परन्तु पितरों को देवता मानकर इसकी कल्पना अवश्य रही होगी। मनु ने दान अथवा तर्पण करके[2] बलि प्रदान करके[3] अथवा किसी एक ब्राह्मण को प्रतिदिन भोजन कराकर[4] पितृयज्ञ की व्यवस्था की थी। वर्तमान समय में प्रचलित मृतक श्राद्ध का ऋषि दयानन्द ने स्पष्ट निषेध किया है।[5] यजुर्वेद में पितरों के तर्पण का स्पष्ट उल्लेख है—

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्॥

सात प्रकार के पितर कहे गये हैं—सोमसद, अग्निष्वात्त, बर्हिषद, सोमप, हविर्भुक्, आज्यप, सुकालिन् और यमराज।

वस्तुतः अपने पूज्य जनों ऋषि, आचार्य, गुरु, पिता, माता आदि को सेवा सत्कार से तृप्त करना श्रद्धा पूर्वक उनकी सेवा करना ही पितृ यज्ञ है।

---

१. अग्नौ प्रास्ताहुतिस्तावदादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥ मनुस्मृति ३।७६॥

२. मनु० ३।७०॥

३. मनु० ३।९१॥

४. मनु० ३।८२।८३॥

५. मृतकोद्देशेन यत्क्रियते, नैव तेभ्यस्तत्प्राप्तं भवतीति व्यर्थापत्तेश्च। तस्माद् विद्यमानाभिप्रायेणैतत् कर्मोपदिश्यते। पञ्चमहायज्ञविधि पितृयज्ञ॥

भूतयज्ञ—

जीवमात्र के लिये बलि देना भूत यज्ञ है।[1] वैदिक परम्पराओं के अनुसार विश्व के सभी प्राणियों के सुख की कामना करना, उनका कल्याण करना भूतयज्ञ कहलाता है। वैदिक साहित्य में उसकी निन्दा की गई है, जो केवल अपने लिये ही भोजन बनाता है जो मनुष्य अकेले ही भोजन करता है, उस मूर्ख का भोजन प्राप्त करना व्यर्थ है। वह केवल पाप को ही खाता है।[2] भूतयज्ञ का या बलि देने का अभिप्राय यही था कि सबको भोजन कराकर ही स्वय भोजन करना चाहिये। भगवद् गीता भी कहती है कि वे मनुष्य केवल पाप को खाते हैं, जो केवल अपने लिये ही भोजन पकाते हैं।[3]

मनु ने भूतयज्ञ (बलि वैश्य देव यज्ञ) के विधान में इन्द्र, वरुण, सोम, मरुत्, जल, वनस्पति, लक्ष्मी, भद्रकाली, ब्रह्मा, विश्वेदेव, रात्रिचर, भूत, पितर इन सभी के लिये बलि देने का विधान किया है।[4] इसके अनन्तर कुत्तों, पतितों चण्डालों, पापियों, रोगियों, कौओं और कृमियों के लिये बलि रखने का विधान है।[5] अथर्ववेद ने बदिवैश्वदेव यज्ञ का स्पष्ट विधान किया है।[6]

अतिथि यज्ञ—

अतिथियों का सत्कार करना ही अतिथि यज्ञ या नृयज्ञ है। वैदिक परम्पराओं के अनुसार गृहस्थ परिवार के लिये अतिथिसत्कार अनिवार्य है। समावर्तन संस्कार में स्नातक को उपदेश दिया जाता था कि वह

---

१. यद् भूतेभ्यो बलिं हरति तद् भूतयज्ञः

२. मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वद इत् सतस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नोसखायं केवलाद्यो भवति केवलादी ॥

ऋग्वेद १०।११७।६॥

३. भुञ्जते ते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ भगवद्गीता ३।१३॥

४. मनुस्मृति ३।८१।९१

५. शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ॥
वायसानां कृमीणां च शुनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥ मनुस्मृति ३·९३॥

६. अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥

अथर्ववेद का० १९।५५।७१॥

अतिथि को देवता समझे।[1] अथर्ववेद में अतिथि की महती महिमा का वर्णन है। वह गृहस्थ का अन्न नहीं खाता, अपितु पापों का भक्षण कर लेता है।[2] घर में पहली रात रहने पर अतिथि पृथिवी के पुण्यलोक को, दूसरी रात रहने पर अन्तरिक्ष के पुण्यलोक को तीसरी रात रहने पर द्युः के पुण्यलोक को और चौथी रात रहने पर अनन्त पुण्यलोक को प्रदान करता है।[3] अग्निहोत्र के समय अतिथि के आने पर उसकी अनुमति लेकर यज्ञ करना चाहिये।[4] अतिथि चाहे शत्रु हो या मित्र उसका स्वागत करना चाहिये। जिसके घर से अतिथि निराश लौटता है, वह अपने पापों को देकर पुण्य को ले जाता है।[5] अतिथि के आने पर उसको व्रात्य सम्बोधित कर स्वयं उठ कर स्वागत सत्कार करना चाहिये तथा उसकी सब कामनाओं को पूरा करना चाहिये।[6]

(१) दान—

दान देना एक परम धार्मिक कर्त्तव्य समझा गया था। अपनी आय में से गृहस्थ को कुछ न कुछ अंश दान के रूप में देना चाहिये। वस्तुतः और अतिथियज्ञ भी दान का ही रूप है। उत्तरवर्ती साहित्य में भी दान की बहुत महिमा है। यजुर्वेद का कथन है कि इस सम्पूर्ण जगत् में ईश्वर निवास करता है अतः त्याग करते हुये धन का उपयोग करना चाहिये। लालच नहीं करना चाहिये। यह धन किसी का नहीं उसी परमात्मा का है।[7]

(२) रति—

गृहस्थ परिवार का दूसरा कार्य रति है। मनु ने उत्तम रति को प्राप्त करना विहित कहा है। स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी का परस्पर न्याययुक्त धर्मविहित सम्पर्क रति है, जो अलौकिक सुख प्रदान करता है। प्रभु का कथन है कि पत्नी एक प्रकार से पति में ही प्रवेश करती है। विवाहित होने के अनन्तर मनुष्य पत्नी में बीज बोते है।[8] इस आश्रम में उनको यौवन

१. अतिथिदेवो भव। तैत्तिरीय ऊपनिषद् २।११।२।२॥
२. वही ६।६।२५,२६॥
३. अथर्ववेद १५।१३।१-१०॥
४. अथर्ववेद १५।१३॥
५. विष्णु धर्मसूत्र ६७।३२॥
६. अथर्ववेद १५।११,१।२॥
७. ईशा वास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ यजुर्वेद ४०।१॥
८. जाया विशते पतिम्॥ ऋग्वेद ११।८५।३६॥

जनित सम्पर्क का सुख प्राप्त होता है।[1] और वे प्रसन्न होकर आनन्द प्राप्त करते पुत्रों-पौत्रों के साथ घर में रहते हैं।[2]

(३) सन्तान—

गृहस्थ परिवार का तीसरा कर्तव्य सन्तान उत्पन्न करना है। वैदिक परम्पराओं में विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है। ऋग्वेद के सूर्या सूक्त में तथा अन्य अनेक स्थानों पर पुत्रों की कामना की गई है। इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह इस वधू को पुत्रवती बनाकर सौभाग्य शाली करे तथा इसके दस पुत्र हों।[3] पुत्र भी वीर हो अर्थात यह वधू वीर प्रसविनी (वीरसू) होवे।[4] पति-पत्नी पुत्र-पौत्रों के साथ अपने घरों घरों में आनन्द प्राप्त करें।[5]

उत्तरवर्तीकाल में पुत्र का महत्व धार्मिक कारणों से भी बहुत अधिक हो गया था। उत्तराधिकारी के लिये पुत्र की आवश्यकता थी ही, मृतक श्राद्ध का प्रचलन हो जाने पर पितृतर्पण के लिये भी उसकी आवश्यकता होने लगी। मनु का कथन है कि पुंनामक नरक से रक्षा करने के कारण पुत्र नामक सार्थक होता है।[6] पुत्र होने पर मनुष्य लोकों को जीत लेता है—पौत्र से आनन्त्य को प्राप्त करता है तथा पुत्र का पौत्र होने होने पर स्वर्ग प्राप्त करता है।[7]

वैदिक युग में, प्राचीन काल में निरन्तर रक्षात्मक कारणों से अधिक सन्तानों की कामना की गई थी। इस कारण कम से कम दस पुत्रों की प्रार्थना है और वे वीर पुत्र होने चाहिये। ये पुत्र शत्रुओं का वध करने वाले होने चाहिये।[8] यह शत्रु से हिंसित न हों, परन्तु उनका

---

१. ऋग्वेद. १०।८५।३७।।
२. ऋग्वेद १०।८५।४२।।
३. इमात्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानां धेहि पतिमेकादशं कृधि।। ऋग्वेद १०।८५।४५।।
४. वीरसूर्देवकामा ।।ऋग्वेद १०।८५।४४।।
५. क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोद मानौस्वे गृहे।। ऋग्वेद १०।८५।४२।।
६. पुंनाम्नोनरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा।। मनु० ९।१३७।।
७. पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण बुध्नस्याप्नोति विष्टपम्।। मनु० ९।१३७।।
८. अम पुत्राः शत्रुहनः।। ऋग्वेद १०।१५९।३।।

पराभव करें। इन्द्राणी अपने को वीरिणी (वीर पुत्र को प्रसव करने वाली) कहती है। इसी में उसकी प्रतिष्ठा है।[1] वीर पुत्र की कामना वैदिक साहित्य में तथा उत्तरवर्ती साहित्य में भी स्थान-स्थान पर की गई है।[2]

(४) धनोपार्जन

गृहस्थ परिवार में धन होना अत्यन्त आवश्यक है। परिवार के पोषण के उत्तरदायित्व को वहन करने वाला गृहस्थ धनोपार्जन के लिये आवश्यक प्रयत्न करता है। पत्नी, पुत्र, माता, पिता आदि उसके पोष्य हैं।[3] इनके अतिरिक्त गुरु, प्रजा, दीन, आश्रित, अभ्यागत और अतिथि इसके पोष्य होते हैं।[4] पत्नी का भरण करने के कारण पति को भर्ता कहते हैं। रक्षा करने के कारण वह पति है। पुत्र का भरण-रक्षण करने के कारण पिता है। परिवार का भरण-पोषण-रक्षण करने के लिये धनोपार्जन आवश्यक है।

वैदिक युग में धनोपार्जन के चार मुख्य उपाय थे—कृषि, पशुपालन, शिल्प और वाणिज्य।

ऋग्वेद में जीविका का प्रमुख साधन कृषि रहा था। प्रभु ने उपदेश दिया था कि कृषि करो। कृषि से उपार्जित धन ही आदरणीय है। उसी से पारिवारिक शान्ति प्राप्त होती है।[5] ऋग्वेद में विकसित कृषि के दर्शन होते हैं। बैलों को जोत कर हल द्वारा खेत जोते जाते थे। उर्वर खेतों को बीज बोने योग्य बनाया जाता था तथा सिंचाई के साधन उप-

---

१. अग्निस्तु विश्वस्तमयं तुविब्रह्माणमुत्तमम्।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे॥ ऋग्वेद ५।१५।५॥

२. ऋग्वेद १०।८६।६,१०॥

३. वृद्धौ मातापितरौ साध्वी भार्या शिशुः सुतः।
अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्याः मनुरब्रवीत्॥

४. माता पिता गुरुर्भार्या प्रजा दीनः समाश्रितः।
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोस्यवर्ग उदाहृतः॥
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः॥ मरुस्मृति २।३२।३३॥

५. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र जाया कितवतत्र भार्या तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः॥
ऋग्वेद १०।१४।१३॥

लब्ध को कुओं, अवटों और कुल्याओं द्वारा सिंचाई की जाती थी। विविध प्रकार के धान्यों को खेतों से प्राप्त करते थे।

जीविकोपार्जन का दूसरा प्रमुख साधन पशुपालन था। कृषीवल समाज के लिये गाय-बैलों की प्रमुख आवश्यकता की। गौओं को महान् धन समझा गया था।[1] गाय के अतिरिक्त अश्व, हाथी, भेड़, बकरी, ऊँट आदि पशुओं के पालन का भी वर्णन मिलता है।

ऋग्वेद में अनेक प्रकार के शिल्पों का उल्लेख मिलता है। कारु (बढ़ई), वैद्य, कर्मार (लोहार), कुलाल, रथकार, वाय (बुनकर), कैवर्त आदि के वर्णन हैं। इससे विभिन्न शिल्पों तथा व्यवसायों का बोध होता है।

ऋग्वेद वाणिज्य के विस्तत वर्णन हैं। अदला बदली तथा क्रय-विक्रय दोनों ही पद्धतियाँ उस समय प्रचलित थीं। शुल्क और वस्त्र द्वारा क्रय-विक्रय होता था।[2] निष्क आदि सिक्कों का प्रचलन था। स्थल और जल मार्ग से व्यापार होता था। बैलों, घोड़ों कुत्तों और ऊँटों से बाहन खींचे जाते थे।[3] कुत्ता उपयोगी पशु था। सामुहिक व्यापार के भी प्रमाण मिलते हैं। सौ चप्पुओं से चलने वाली नौकाओं का वर्णन है।[4] वरुण देवता समुद्री भागों को भली प्रकार जानते हैं।[5]

धनोपार्जन के लिये विभिन्न उपायों का अवलम्ब करने वाले गृहस्थ

---

१. गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्रइच्छमीद्धृदा मनसाचिदिन्द्रम्॥
ऋग्वेद ६।२८।५॥

२. भूयसा वस्नमचरत् कनीयोऽविक्रीतो अकामिसं पुनर्यन्।
सभूयसा कनीयो नारिरेचीद् दीना दक्षा ति दुहन्ति प्रवाणम्॥
ऋग्वेद ४।२४।९॥

३. अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नुतत्॥ ऋग्वेद ८।४६।२८॥

४. अनारम्भणे तद् वीरयेथामनास्थाने अग्रमणे समुद्रे।
यदश्विना अहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्॥
ऋग्वेद १।११६।५

५. वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः॥
ऋग्वेद १।२५।७

के लिये यह आवश्यक बताया गया था। कि वह घर में कुछ अवधि के लिये अन्न का संग्रह अवश्य करे। वह ३ वर्ष, १ वर्ष १२ दिन या ६ दिन की अवधि का अन्न अवश्य रखें।[1]

ऊपर के विवरणों से स्पष्ट है कि वैदिक युग में परिवार का भली प्रकार संगठन हो गया था। परिवार के सभी सदस्य पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पिता, सास-ससुर, ननद, देवर, भाई-बहन परस्पर स्नेह और सौजन्य से रहते थे। घर के भरण-पोषण का धनोपार्जन का उत्तरदायित्व परिवार के प्रमुख का होता था। घर के कार्यों का संचालन वधू करती थी। वह अपने स्नेह पूर्ण व्यवहार से सास, ससुर, ननद, देवर आदि सभी के हृदयों पर शासन करती थी।

---

१. मनुस्मृति ४।७।

ऋग्वेद में पारिवारिक स्वरूप

डा० महावीर शास्त्री, संस्कृत विभाग,
गुरुकुल काँगड़ी विश्व विद्यालय, हरिद्वार

सृष्टि के प्रारम्भ से ही ऋग्वेद न केवल भारतवर्ष का अपितु समस्त मानव-जाति का प्रकाश भाव, शक्ति स्रोत और पथ-प्रदर्शक रहा है। वेदों के दिव्यालोक ने अतीत में सर्वत्र व्याप्त होकर मानव-जीवन में प्रविष्ट अज्ञानान्धकार को दूर कर निराशा दुर्विचार, अनाचार एवं दुर्गुणों की घनपटली को छिन्न-भिन्न कर सारे संसार को प्रेम, शान्ति, सह-अस्तित्व एवं विश्वबन्धुत्व का अमर सन्देश दिया। चारों वेदों में ऋग्वेद का महत्व भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है। केवल आकार के कारण ही नहीं अपितु मानव-मात्र के लिये उपयोगी प्रत्येक विषय के साङ्गोपांग विवेचन से भी इसकी महत्ता स्वयं स्तम्भ सिद्ध है।

राष्ट्र जीवन अथवा सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण इकाई परिवार है। हमारा सम्पूर्ण सामाजिक जीवन परिवाररूपी संस्था से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। व्यक्तिगत जीवन को भी पारिवारिक जीवन से पृथक् नहीं किया जा सकता। अनेक पाश्चात्य एवं उनके अनुगामी भारतीय इतिहास-कारों का कथन है कि मानव प्रारम्भिक अवस्था में सर्वथा सभ्यता, संस्कृतिविहिन इधर-उधर वनों से भटका करता था अपनी क्षुधा-शान्ति के लिये। फिर वह कबीले के रूप में रहने लगा और बहुत परवर्ती काल में परिवार नामक संस्था का जन्म हुआ। उसमें भी धीरे-धीरे परिष्कार होता रहा। हम अपने प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के आलोक में जब इस मन्तव्य की प्रामाणिकता का विचार करते हैं तो यह धारणा सर्वथा भ्रान्त एवं कल्पना की आधारशिला पर आरोपित की गई प्रतीत होती है।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में यत्र-तत्र अनेक ऋचाओं में परिवार की सुन्दर परिकल्पना अत्यन्त प्रभावोत्पादक शैली में प्रस्तुत की गयी है। परिवार सबसे लघु इकाई है। उससे बड़ी इकाई समाज है उससे आगे राष्ट्र या देश और उससे बड़ी इकाई विश्व है। सबसे छोटी इकाई परिवार

के योगक्षेम से ही राष्ट्र का अभ्युदय होता है। व्यक्ति की उन्नति से परिवार और परिवार की उन्नति से समाज तथा राष्ट्र उन्नत होता है। अत: भगवती श्रुति यह बताती है कि परिवार को सुखी समृद्ध और शान्ति युक्त कैसे बनाया जाये।

भोगवादी, व्यक्तिगत सुख सुविधाओं की इच्छुक विदेशी सभ्यता के प्रभाव से भले ही भारतवर्ष में भी परिवार का स्वरूप संकुचित होता जा रहा है जिसमें माता-पिता एवं पुत्र-पुत्रियाँ ही सम्मिलित मानी जाती हैं। किन्तु ऋग्वैदिक परिवार की परिधि में पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, भाई वहिन, पौत्र पौत्री और पुत्र वधू आदि सभी समन्वित हैं। ऋग्वेद में पारिवारिक स्वरूप चित्रित करते समय सर्वत्र यही दृष्टिकोण रहा है कि परिवार को सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाना एक राष्ट्र को सुन्दर वनाने के तुल्य है। परिवार का शुभारम्भ युवक और युवती के विवाह संस्कारोपरान्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश के साथ होता है। भारतीय संस्कृति षोडश संस्कारों में विवाह संस्कार को सर्वाधिक महत्व प्रदान करती है। दाम्पत्य जीवन की सुदृढ़ आधारशिला पर ही परिवार रूपी प्रासाद स्थिर रहता है। इसलिये अन्य संस्कारों की अपेक्षा विवाह की विधि विस्तार से प्रतिपादित की गई है। इस संस्कार में विनियुक्त ऋग्वैदिक मंत्रों में दाम्पत्य जीवन के उत्तमोत्तम आदर्श, कर्त्तव्य एवं शिक्षायें अत्यन्त प्रभावोत्पादक रूप में अंकित है। विवाह विधि के मन्त्रों में परिवार का दिव्य स्वरूप सुन्दर शैली में चित्रित है।

यद्यपि ऋग्वेदकालीन पारिवारिक संरचना को पितृसत्तात्मक कहा जा सकता है तथापि परिवार के निर्माण में नारी का स्थान निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण रहा है। ऋग्वेद के मंत्रों में नारी के लिये जो आप:, अदिति, योषा, उषा, सरस्वती, इडा, पुरुप्रिया, विभावरी, राका, सिनीवाली, अनुमति कुहु आदि जो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं वे यह उपदेश देते हैं कि यदि नारी इन गुणों से मण्डित हो जाये तो परिवार को सुख, समृद्धि, शान्ति का आगार वना सकती है। इस युग के महान समाज-सुधारक, वेद भास्कर महर्षि दयानन्द ने वेद भाष्य करते हुए ऋग्वेद के मंत्रों के भावार्थ में पति-पत्नी के परस्परिक व्यवहार पर प्रकाश डाला है। वे कहते हैं—"जैसे रात्रि में नक्षत्र लोक-चन्द्रमा के साथ और प्राण शरीर के साथ वर्तते हैं, वैसे विवाह करके स्त्री-पुरुष आपस में वर्ता करें।" (ऋ० भा० १/५०/२)

'जैसे चक्र के समान घूमते हुए रात्रि-दिन परस्पर संयुक्त वर्तते हैं वैसे विवाहिता स्त्री-पुरुष अत्यन्त प्रेम के साथ वर्ता करें।"

(ऋ० भा० १/६२/८)

"पूर्ण युवा पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह

करे उसका अप्रिय कभी न करे। कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे उसका अनिष्ट कभी मन से भी न विचारे। इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर के कार्य संभाले।"
(य० भा० ११/३६)

विवाहोपरान्त स्त्री-पुरुष को अपने-अपने ब्राह्मणादि वर्ण के अनुसार कर्म करते हुए पारिवारिक जीवन को सुखी बनाना चाहिये। महर्षि दयानन्द इस विषय में लिखते हैं—

"जैसे नदी और समुद्र मिलकर रत्नों को उत्पन्न करते हैं, वैसे स्त्री-पुरुष प्रशस्त सन्तानों को उत्पन्न करें।" (ऋ० भा० ३/१/७)

"जहाँ स्त्री-पुरुष बुद्धिमान और पुरुषार्थ होकर सत्कर्मों का आचरण करते हैं, वहाँ सारी लक्ष्मी विराजमान होती है।" (ऋ० भा० ७/३९/१)

ऋग्वेद में नारी के माता, भगिनी, पुत्री, पुत्र वधू, मातामही, पितामह आदि अनेक रूपों का हृदयावर्जक स्वरूप चित्रित किया गया है। दोनों के सामंजस्य से ही सौर जगत सप्राण बना है।

"परिवार में पुरुष द्युलोक है तो नारी पृथ्वी है, पुरुष साम है तो नारी ऋक् है दोनों के सामंजस्य से ही सृष्टि का सामगान होता है। पुरुष वीणा-दण्ड है तो, नारी वीणा-तन्त्री है। दोनों के सामंजस्य से ही जीवन के संगीत की झंकार निःसृत होती है। पुरुष दिन है तो नारी रजनी है। पुरुष प्रभात है तो नारी उषा है। पुरुष मेघ है तो नारी विद्युत है। पुरुष अग्नि है तो नारी ज्वाला है। पुरुष आदित्य है तो नारी प्रभा है··· दोनों के सामंजस्य में ही पूर्णता है।" वैदिक नारी ले० डा० रामनाथ वेदालंकार ऋग्वेद के अनेक मंत्र परिवार अथवा गृहस्थ रूपी रथचक्र के चारों ओर घूमते दिखाई देते हैं।

किसी भी समाज अथवा परिवार की सुख-समृद्धि के लिये कतिपय कर्त्तव्यों एवं गुणों का होना अत्यावश्यक है। जब तक परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करेगा और उत्कृष्ट गुणों से मण्डित नहीं होगा तब तक यह परिवार रूपी संस्था उन्नति नहीं कर सकती।

ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर इस प्रकार के मन्त्र हैं जिनमें माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि द्वारा करणीय कर्त्तव्यों का उपदेश दिया गया है। दम्पति परिवार के मुख्य केन्द्र बिन्दु हैं। अतः सर्वप्रथम पति-पत्नी के कर्त्तव्यों का विचार करना उचित होगा। उनमें परस्पर सद्भाव, पारस्परिक स्नेह, एक-दूसरे के विचारों का आदान प्रदान और मिलकर काम करने की प्रवृत्ति होनी चाहिये। जहाँ पति या पत्नी एक-दूसरे के

हित की बात न सोचकर केवल अपने हित की बात सोचते हैं। वहाँ दुःख, क्लेश, मनोमालिन्य आदि प्रारम्भ होते हैं। अतः वेद मंत्र कहता है—

"अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु" (ऋ० ६/१५/१९) अर्थात् पति-पत्नी मिलकर गृहस्थ धर्म का निर्वाह करें। मिलकर कार्य करने से परिवार में परस्पर सद्भाव की वृद्धि होती है। सात्विकता आती है, आस्तिकता के भाव बढ़ते हैं और मन में जो ईर्ष्या व द्वेष के भाव होते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं, परिवार में समन्वय स्थापित होता है। पत्नी को चाहिये कि वह पति से सदा मधुर और शान्तिपूर्ण वचन ही बोले। कभी कटु वाणी का प्रयोग न करे। मधुर भाषण पारस्परिक स्नेह को दृढ़ करता है, सौमनस्य लाता है और आन्तरिक आनन्द में वृद्धि लाता है। कटु वचन घृणा द्वेष ईर्ष्या और असहिष्णुता को उत्पन्न करते हैं।

माता-पिता एवं सास-ससुर का कर्त्तव्य बताया गया है कि वे अपनी सन्तान से तथा पुत्र-वधू आदि से मधुर वचन बोलें और उदार हृदय से पुत्रादि और बन्धुओं को धन देने से प्रेम बना रहता है और परिवार की भी श्री वृद्धि होती है।

आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै, द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे।
पिता-माता मधुवचाः सुहस्ता भरे भरे नो यशसावविष्टाम्॥

(ऋ० ५-४३-२)

आजकल सम्पत्ति को लेकर पिता-पुत्र एक-दूसरे की जीवन-लीला तक समाप्त कर देते हैं। भाई-भाई का रक्त प्रवाहित कर देता है। परिवार के सदस्य एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। इस भयानक समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए वैदिक ऋषि कहते हैं—

प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्त-मायते।
असिन्वन् द्रंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं, यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः॥

(ऋ० २-१३-४)

इस मन्त्र में माता-पिता को निर्देश दिया गया है कि वे अपनी सम्पत्ति का यथायोग्य विभाजन पुत्रों में कर दें। जिस प्रकार अतिथि को अन्नादि देकर गृहस्थ अपने आपको सुखी मानता है, उसी प्रकार पुत्रों को धन देकर गृहस्थ को सुख अनुभव करना चाहिये। जो माता-पिता अपने को धन के बन्धन से मुक्त कर लेते हैं वे सदा सुख से रहते हैं।

माता के प्रति पुत्र के हृदय में श्रद्धा, पुत्र मातृभक्त बने इस भावना के जागरण हेतु वेद में अनेक उपाय बताये हैं उनमें से एक साधारण

दिखाई देने वाला किन्तु महत्वपूर्ण उपाय है—माता पुत्र के लिये वस्त्र बुने—

वितन्वतेधियो अस्मा अपांसि, वस्त्रापुत्राय मातरोवयन्ति।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ।।

(ऋ० ५-४७-६)

माता-पिता अपनी सन्तान के लिये कारखाने में बना हुआ मंहगे से मंहगा वस्त्र खरीदकर भले ही पहना दें, किन्तु उस मूल्यवान वस्त्र को धारण कर पुत्र को वह सुख नहीं मिलता जो माता के स्नेहिल हाथों से तैयार किये हुए चरखे पर मधुर गीत गाकर काते हुए धागे से निर्मित वस्त्र से प्राप्त होता है। माता के हाथ का बुना वस्त्र पुत्र को कितना प्रिय होता है यह तो अनुभूति का विषय है इससे पुत्र पर माता की ममता का अद्भुत मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है।

वेद की शिक्षा है कि भाई-भाई, भाई-बहिन और बहिन-बहिन परस्पर प्रेम से रहें। वे अपने पारस्परिक मतभेदों को प्रेम से सुलझा लें। वे छोटे-बड़े का भेदभाव न करें वे मिलकर काम करते हैं तो उन्हें सदा सौभाग्य प्राप्त होगा—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते स भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघापृश्नि सुदिना मरुद्भ्यः ।।

(ऋ० ५-६०-५)

परिवार की श्री वद्धि के लिये आवश्यक है कि पूरे परिवार में भ्रातृत्व भावना विद्यमान हो। जहाँ सम्मिलित या सामूहिक प्रयत्नशीलता है, वहाँ श्री और सौभाग्य स्वयं उपस्थित रहते हैं।

पति-पत्नी को पाणिगृहण के अवसर पर की गई प्रतिज्ञाओं को सदैव स्मरण करते हुए परस्पर सौमनस्य, तादात्म्य और आत्मसमर्पण की भावना बनाये रखनी चाहिये। वधू के पाणिग्रहण के साथ ही पत्नी की रक्षा और उसके पोषण का उत्तरदायित्व पति पर आ जाता है। पत्नी सदा पोष्य है और पति उसका पोषक है—

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं, मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ।।

(ऋ० १०-८५-३६)

वेद में भाई-बहिन का प्रेम अत्यन्त सात्विक माना गया है। उसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आनी चाहिये। उनका प्रेम सदा आदर्श रूप में ही रहना चाहिये।

न वा उ ते तनूं तन्वा स पपृच्यां, पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ।।

(ऋ० १०-१०-१२)

वेदों में पुत्र प्राप्ति का महत्व अनेक स्थानों पर कहा गया है। "अपुत्राणां न सन्ति लोकः शुभाः" यह हमारी प्राचीन धारणा है। संतानहीन कुल में अनेक करणीय कर्म अपूर्ण रह जाते हैं। पुत्र प्राप्ति से माता-पिता अपने पूर्वजों के ऋण से अनृण होते हैं। अतः योग्य सन्तति को जन्म देकर कुल परम्परा को आगे बढ़ाना आवश्यक है—

जनय दैव्यं जनम्, प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः आदि वचन यही सन्देश देते हैं।

जिस प्रकार ऋग्वेद में नारी के गुणों पर प्रकाश डाला है उसी प्रकार पुत्र के गुण भी विस्तार से वर्णित हैं। पुत्र सम्पूण परिवार की आशाओं, आकांक्षाओं का प्रकाश दीप माना गया है। पुत्र जन्म से परिवार रूपी आकाश में व्याप्त समस्त अन्धकार समाप्त होकर चहुँ ओर प्रकाश व्याप्त हो जाता है। भगवती श्रुति कितना सुन्दर कहती है—

ते सूनवः स्वपसः सुदंससो, मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि, पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः॥

(ऋ० १-१५३-३)

परिवार को सुखी और समृद्ध बनाने के लिये वेदों में अनेक गुणों का निर्देश किया गया है। इन गुणों को धारण करने वाले परिवार सदा सुखी प्रसन्न और समृद्ध रहते हैं। उस घर में श्री का निवास होता है पारस्परिक स्नेह और विश्वास होता है तथा शान्ति का वातारण बना रहता है।

परिवार में संगठन और एकता अवश्य होनी चाहिये। सब परस्पर प्रेम करें, सबके हृदय मिले हुए हों। पारस्परिक द्वेष की भावना को दूर रखें। सबके दिलों में सौहार्द हो, सबमें समन्वय की भावना हो। छोटे-बड़े का भेद-भाव भुलाकर सौभाग्य प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्नशील हों। जब परिवार में प्रेम, धैर्य और स्वावलम्बन आदि गुण होते हैं तभी परिवार में रायस्पोष और योगक्षेम रहता है।

परिवार की सुख-शान्ति के लिये सबसे आवश्यक गुण है—सदा प्रसन्नचित्त रहना। चित्त की प्रसन्नता से जहाँ परिवार में सुख शान्ति का साम्राज्य रहता है वहाँ स्वास्थ्य भी उत्कृष्ट रहता है—

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तरम्।
तथा करद् वसुपतिर्वसूनाम् देवां ओहानोऽवसागमिष्ठः॥

(ऋ० ६-५२-५)

इस मन्त्र का सम्पूर्ण आशय गीता के श्लोकों में अभिव्यंजित हो रहा है। योगेश्वर कृष्ण कहते हैं कि जब मनुष्य प्रसन्नचित्त होता है तब उसका मन राग, द्वेष से रहित हो जाता है उसके सारे क्लेश नष्ट हो जाते हैं और मन पवित्र होने से उसकी बुद्धि भी शान्त और स्थिर रहती है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा, प्रसादमधिगच्छति ।।
प्रसादे सर्वदुःखानां, हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।

(गीता २-६४-६५)

परिवार में सुख शान्ति के स्थायी निवास के लिये आर्थिक सुदृढ़ता और अन्नधान्य की परिपूर्णता हेतु ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में प्रार्थनायें की गयी हैं किन्तु वेदमाता पग-पग पर सावधान करती चलती है कि सुमार्ग से प्राप्त धनैश्वर्य से ही परिवार में प्रेम, सुख एवं सौहार्द की सरिता प्रवाहित होती है, अन्यायोपार्जित वित्त से परिवार में कदापि सुख का वास नहीं होता।

यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे, यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ।। (ऋ० ८-४५-४१)

इस प्रकार ऋग्वेद में परिवार के सदस्यों के कर्तव्यों, गुणों और आदर्शों का हृदयग्राही शैली में विशद विवेचन उपलब्ध होता है। समस्त पारिवारिक सम्बन्धों को अत्यन्त पवित्र भाव से वर्णित किया गया है। कतिपय वेद भाष्यकारों अथवा शोध-कर्त्ताओं ने अपने पल्लवग्राही पाण्डित्य अथ च दूषित बुद्धि द्वारा भाई-बहिन, पिता-पुत्री माता-पुत्र आदि के गंगा-नीरवत् पुनीत सम्बन्धों में भी मलिनता की दुर्गन्ध दर्शाने का कुप्रयास किया है जबकि चारों वेदों में एक भी ऐसा प्रसंग अथवा मन्त्र नहीं है जिसमें कुत्सित स्वरूप दृष्टिगोचर होता हो।

ऋग्वेद में जहाँ परिवार को जोड़ने तथा एक सूत्र में पिरोने के अनेक उपाये बताये गये हैं वहाँ उन दोषों से भी सावधान किया गया है जो परिवार को तोड़ते हैं। स्वार्थपरता, धनलिप्सा तथा आत्मकेन्द्रित होना ये ऐसे दुर्गुण हैं जो परिवार को तोड़ने वाले हैं। भोगकारी प्रवृत्ति भी विध्वंसकारिणी मानी गई है।

ऋणी होना परिवार के लिये दुःखकर है। परिवार में सदा निर्भयता का भाव रहना चाहिये। सभी को उत्साही, साहसी और निर्भय होना चाहिये।

ऋग्वेदोक्त उपर्युक्त मर्यादाओं का, कर्तव्यों का जहाँ सदापरिपालन होता है वहाँ सदा आनन्द का साम्राज्य रहता है।

इस प्रकार हमें ऋग्वेद में परिवार का समग्र स्वरूप सम्पूर्ण भव्यता एवं दिव्यता के साथ दृष्टिगोचर होता है।

यदि हम चाहते हैं कि हमारे परिवार में सदा सुख शान्ति बनी रहें, हमारी सन्तति देशभक्त, चरित्रवान्, सद्गुणों की सुगन्ध में परिपूर्ण हो तो हमें वेद माता की स्नेहिल छाया का आश्रय अवश्य लेना होगा।

फार्म ४

(नियम ८ देखिये)

१—प्रकाशन स्थान	स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान गुरुकुल प्रभात आश्रम भोला मेरठ
२—प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
३—मुद्रक नाम	विवेकानन्द सरस्वती आचार्य
पता	गुरुकुल प्रभात आश्रम भोला मेरठ
क्या भारत का नागरिक है	हाँ
४—प्रकाशन का नाम	विवेकानन्द सरस्वती कृते स्वामी समर्पणानन्द वै० शोध संस्थान
५—सम्पादक	विवेकानन्द सरस्वती

६—उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हो या समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के स्वामी या हिस्सेदार हो— आचार्य—गुरुकुल प्रभात आश्रम भोला २५० ५०१ (उ० प्र०) मेरठ

मैं विवेकानन्द सरस्वती एतद् द्वारा घोषित करता हूं मेरी अधिक जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये विवरण सत्य है

दि० २८ फरबरी ८६ ह० विवेकानन्द सरस्वती

आचार्य
गुरुकुल प्रभात आश्रम
भोला, मेरट उ० प्र०

प्रभात की प्रभा

२ अप्रैल १ दिल्ली विश्व विद्यालय द्वारा गुरुकुल प्रभात आश्रम के सुयोग्य स्नातक श्रीयुत् श्री वत्स निगमालंकार को "संस्कृत व्याकरण दर्शन को हेलाराज की देन" विषय पर पी० एच० डी० की उपाधि से सम्मानित किया गया अपने शोध प्रबन्ध में श्री निगमालंकार ने व्याकरण के मूर्धन्य दार्शनिक ग्रन्थ "वाक्यपदीयम्" पर हेलाराज द्वारा लिखी गयी 'प्रकाश' टीका को आधार बनाकर पद पदार्थ एवं सम्बन्ध के विशेष अध्ययन के साथ ही तत्सम्बन्धी अन्य भारतीय दर्शनों के सिद्धान्तों पर भी अपनें चिन्तन को प्रस्तुत किया है।

श्री निगमालंकार १९८३ में दिल्ली विश्वविद्यालय से M. A. (संस्कृत) में सर्वप्रथम आकर स्वर्ण पदक प्राप्त कर चुके हैं तथा तदुपरान्त आपने M. Phil. (दर्शन निष्णात) की उपाधि भी दिल्ली वि० वि० से प्राप्त की है।

अपने छात्र जीवन में श्री निगमालंकार विभिन्न अखिल भारतीय स्तर की प्रतियोगिता में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर अपनी अध्ययन स्थली गुरुकुल प्रभात आश्रम का गौरव बढ़ा चुके हैं।

आपके पत्र

'पावमानी' के प्रत्येक अंङ्क के सुन्दर प्रकाशन विद्वत्ता पूर्ण लेख सामग्री हेतु शुभकामनायें।

मेरे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य लिखें। हो सके तो प्रत्येक संस्कार पर गम्भीर चिन्तन पूर्ण लेख माला प्रत्येक अंङ्क में तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करें।

पूर्ण विधि के साथ

धन्यवाद सहित

अर्जुन देव 'स्नातक'
५—सीताराम भवन, फाटक
आगरा कैण्ट—२८२००१ उ० प्र०

'पावमानी' तृतीय वर्ष का चतुर्थ अंक प्राप्त हो चुका हैं। लोकों के विषय में पढ़कर जहाँ ज्ञान में वृद्धि हो रही है, वही ज्ञान प्राप्ति के प्रति उत्सुकता भी बढ़ती जा रही है।

बहुत-बहुत धन्यवाद

महात्मा प्रेम प्रकाश
आर्य कुटिया, धूरी
पंजाब १४८०२४

यह सम्भव है कि आपके पास बहुत से ऐसे पत्र आते होंगें जिनमें **'पावमानी'** के न प्राप्त होने की शिकायत लिखी होती होगी किन्तु मेरी शिकायत यह है कि आपकी पत्रिका मुझे नियमित प्राप्त होती रहती है। इस प्रकार की उत्कृष्ट पत्रिका से हम लोगों का ज्ञान सम्पुष्ट हो रहा है। वर्ष तृतीय (१९८८) का अंक तृतीय (अप्रैल-जून) में प्रकाशित –

भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड नारी—मुझे ही नहीं मेरे जैसे अनेक पाठकों को दिशा बोध देता है।

'सामर्पण शतपथ धारा' में तो अवगाहन मैंने अब प्रारम्भ किया उसका तो अपना पृथक् आनन्द है।

'पावमानी' हमारे जैसे न जाने कितने लोगों के मस्तिष्कों को पावन बना रही है। इसका अनुमान सम्भवतः आप नहीं लगा सकेंगे। प्रभु से हमारी यही प्रार्थना है कि—**'पावमानी'** धारा सतत प्रवाहित होती रहे।

आपका

विजयेन्द्र सिंह।

शेखपुरी, मेरठ

'**पावमानी**' हमें यथा समय प्राप्त होती रहती है। प्रथम वर्ष के चतुर्थ अंक में विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित 'दाम्पत्य सूक्त' (अथर्ववेद का चौहदवाँ काण्ड) की धर्म स्पर्शी व्याख्या पढ़कर मैं भावविभोर हो गयी तथा वेदों के प्रति श्रद्धावनत मस्तक होकर उनकी गरिमा एवं महिमा को पहचान सकी ऐसा लगा कि 'सरिता' के द्वारा वेदों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा जाता है। वह सर्वथा निर्मूल एवं निराधार है। मैं तो यह चाहती हूं कि प्रत्येक दाम्पत्य जीवन स्वीकार कर चुके तथा भविष्य में ग्रहण करने वाले प्रत्येक नवयुवक एवं नवयुवती को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। मेरा विश्वास हैं कि इसका अध्ययन जीवन पथ पर आगे बढ़ने में प्रकाश स्तम्भ के तुल्य सहायक होगा।

सन्तोष—(एम० ए०)
२४४ जी० वी० पंचकुइया रोड
रेलवे कैम्प्लेक्स नई दिल्ली

कुछ अपनी

उड़ीसा के विश्व कल्याण महायज्ञ तथा परीक्षा में अधिक समय देने के कारण हम चाहते हुये भी समय पर **पावमानी** को पाठकों की सेवा में प्रस्तुत नहीं कर सकें जिसका हमें खेद है।

'ऋग्वेद में पारिवारिक स्वरूप' विषय पर अनेकानेक विद्वानों ने १३ जनवरी को हुई गोष्ठी में अपने शोध प्रबन्धों को पढ़ा था।

उनमें से अधिकांश को हमने वैचारिक सहमति या असहमति को ध्यान में न रखते हुये अविकल रूप से पत्रिका में स्थान दिया: जिससे हमारे पाठक भी क्रिया प्रतिक्रिया में रुचि लेकर आर्ष सिद्धान्तों का दृढता पूर्वक प्रतिपादन कर सकें।

कुछ विद्वानों की एतद् विषयक रचनायें हम इस वार स्थानाभाव से प्रकाशित नहीं कर पाये उनसे सभापूर्वक निवेदन यह कि अग्रिम अङ्क में अपनी रचनायें पत्रिका में अवश्य देख पायेगें।

अन्त में विज्ञ पाठकों विचारों की पतीक्षा अवश्य रहेगी

भवदीय
व्यवस्थापक

भूमि सूक्त

(गताङ्क से आगे)

यस्यां वेदिं परि गृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वेत विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्या पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ।।१३।।

अर्थ—(यस्याम्) जिस, (भूम्याम्) भूमि पर (वेदिम्) वेदि को (परिगृह्णन्ति) ग्रहण करते है बनाते हैं (विश्वकर्माणः) अनेक कार्यो में निपुण लोग (यस्याम्) जिसमें (यज्ञम्) यज्ञ को (तन्वेत) फैलाते हैं, कहते हैं, (यस्याम्) जिस (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (आहुत्याः) आहुति से (पुरस्तात्) पहले (ऊर्ध्वाः) ऊँचे (शुक्राः) तेजस्वी-उज्ज्वल वर्ण के (स्वखः) स्वरू-यूपखण्डों का (मीयन्ते) निर्माण किया जाता है, (सा) वह (भूमिः) हमारी मातृ भूमि, (वर्धमाना) संवर्धित होकर (नः) हमें (वर्धयत्) बढ़ावें ।।१३।।

जिस भूमि पर वेदि रचकर यज्ञों का विस्तार करें,
विविध कर्म में कुशल विबुधगण स्वरुओं का निर्माण करें ।
आहुति के देने से पहले उच्च शुभ स्वरु बनता है,
मातृभूमि की विजय पताका हो जैसा वह रहता है ।
वह भूमि संवर्धित होकर हम सबका वर्धन कर दे,
अपने यज्ञों के धूम्रों से मंगल घर-घर में भर दे ।।

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्या द्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तन्नो भूमे रन्धय पूर्व कृत्वरि ।।१४।।

अर्थ—(पृथिवि) हे अति विस्तार वाली मातृ भूमे ! (यः) जो (नः) हमसे (द्वेषत्) द्वेष करे (यः) जो, (हम पर) (पृतन्यात्) हमारे ऊपर आक्रमण के लिये सेना का सहारा ले, (यः) जो (मनसा) मन से, और (यः)

जो (वधेन) वध करने वाले शस्त्रों से (अभि दासात्) दास बनाये (तन्) उसको (पूर्वकृत्वरि) सभी प्राणियों के मनोरथों का पूर्ण करने वाली (भूमे) हे मातृ भूमे ! (रन्धय) नष्ट कर दे ।।१४।।

जो दुष्ट द्वेष करता हमसे सेना से धावा करता है,
मन से वध से जो दास बनाने की इच्छा करता है ।
उस दुष्ट नराधम को भूमे तू नाश अभी कर दे मेरे,
तू पूर्व कृत्वरी देवी है यह कर्म नहीं हैं नव तेरे ।।१४।।

त्वज्जाता स्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः । तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ।।१५।।

अर्थ—हे मातृ भूमे ! (मर्त्याः) मर्त्य लोक के सभी मनुष्य (त्वज्जाताः) तुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, और (त्वयि) तुझ पर ही (चरन्ति) विचरण करते हैं (त्वम्) तुम (द्विपदः) दो पैर वाले मनुष्य आदि प्राणियों को (विभर्षि) धारण करती हो उनका पालन करती हो (पृथिवि) हे पृथिवि (इमे) ये (पञ्च) पाँच प्रकार के (मानवाः) मानव (येभ्यः) जिन (मर्त्येभ्यः) मानवों के लिये (उद्यन्) उदय होता हुआ (सूर्यः) सूर्य (रश्मिभिः) किरणों से (अमृतम्) अमरता से युक्त (ज्योतिः) ज्योति प्रकाश को (आतनोति) चारों ओर फैलाता है ये सब—(ते) तेरे ही हैं ।।१५।।

तुझसे सब उत्पन्न हुये नर तुझ पर विचरण करते हैं,
दोपाये चौपाये तुझसे धारित पोषित रहते हैं ।
पाँच प्रकार के मानव भूमे ! यह तव प्रजा निराली है,
उगता सूर्य रश्मि-अमृत से फैलाता खुशहाली है ।।१६।।

ता नः प्रजाः संदुह्रतां समग्राः ।
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ।।१६।।

अर्थ—(पृथिवि) हे अति विस्तार युक्त मातृ भूमे ! (ताः) वे समग्राः) सभी (प्रजा) प्रजा-जन (नः) हमें (सम्) अच्छी प्रकार दुह्रताम्) परिपूर्ण करें । तू (मह्यम्) मेरे लिये (वाचः) वाणी की (मधु) मिठास (धेहि) धारण करो—अर्थात् मुझे प्रदान करे ।।१६।।

वाणी का माधुर्य प्रदान कर, मां हम तुझ से मांग रहे ।
प्रजा तुम्हारी सुख दोहन में हम सब के अविकार रहे ।।१६।।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् । शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा ।।१७।।

अर्थ—(विश्वस्वम्) सभी ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाली, (ओषधीनाम्) ओषधियों का (मातरम्) निर्माण करने वाली (ध्रुवाम्) स्थिर

रहने वाली (धर्मणा) धर्म से (धृताम्) धारण की गई (शिवाम्) शिव-कल्याण करने वाली (स्योनाम्) सुख प्रदान करने वाली (पृथिवीम्) अपनी मातृ-भूमि का हम (विश्वहा) अनेक प्रकार से (अनुचरेम) अनुगमन करें, सेवा करें ॥१५॥

सब ऐश्वर्यो की जननी तू ओषधियों की माता है।
स्थिर विस्तृत धर्म धृता तू सब तुझसे हो जाता है।
सब प्रकार के सुख वैभव का हम तुझ पर उपभोग करें,
बन सेवक तेरे जननी हम तेरे दुःख को नष्ट करें ॥१७॥

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे।
महाँस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।
सा नो भूमे प्ररोचय हिरण्यस्येव संदृशि मानो द्विक्षत कश्चन ॥१८॥

अर्थ—हे मातृ भूमि ! तू (महती) बहुत बड़ी है और इसीलिये तू हम सबका (महत्) बड़ा (सधस्थम्) साथ-साथ रहने का स्थल (बभूविथ) बनी है (ते) तेरा (वेगः) वेग (एजथुः) चलना (वेपथुः) कांपना (महान्) महान है (त्वा) तुझे (महान्) महान् (इन्द्रः) अत्यैश्वर्यवान् चक्रवर्त्ती राजा, और परमेश्वर (अप्रमादम्) आलस्य रहित होकर (रक्षति) रक्षित करता है (भूमे) हे मातृ भूमे ! (सा) वह तू (नः) हमें (हिरण्यस्येव) सोने के समान (संदृशि) रूप में (प्ररोचय) चमका दे (कश्चन) कोई भी (नः) हमसे (मा) मत (द्विक्षत) द्वेषकरे।

तू महान् एक सभाभवन है तेरा वेग महाभारी,
कम्पन भी वैसे ही तेरा जिससे डरते नर नारी।
राजा रक्षा करना तेरी है प्रमाद का नाम नहीं,
स्वर्ण समान दीप्ति करते तू द्वेषी का हो काम नहीं ॥१८॥

अग्निर्भूम्यामोषाधीष्वग्निमापो विभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥

अर्थ—(भूम्याम्) सर्वाश्रय-भूमि में (अग्निः) अग्नि है, इसकी (ओषधीष) सबको पुष्ट करने हारी ओषधि में (आपः) जल (अग्निम्) अग्नि को (बिभ्रति) धारण कर रहे हैं, इसके (अश्मसु) प्रस्तरों में (अग्निः) अग्नि है, इसके (पुरुषेषु-अन्तः) पुरुषों के अन्दर (अग्निः) अग्नि है, इसकी (गोषु) गौवों में, और इसके (अश्वेषु) घोड़ों में (अग्नयः) अग्नियाँ हैं।

तेरे अन्दर अग्नि भरा है ओषधी जल पत्थर में पूर।
पुरुष और गौवों अश्वों में सर्वविधि अग्नि है भर पूर ॥

द्यौलोक में अग्नि तेरे आन्तरिक्ष में भी रिक्त नहीं।
जो दीप्ति के प्रेम पुजारी उनसे अग्नि दूर नहीं ।।१६।।
अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्नि मर्त्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ।।२०।।

अथ—(दिव) दिव द्यु लोक में रहने वाली अग्नियाँ द्यु लोक से आकर पृथ्वी पर (अग्निः) अग्नि (आतपति) चारों तरफ से तपाती है (उरु) विस्तीर्ण (अन्तरिक्षम्) आकाश (देवस्य दिव्य गुणों से युक्त (अग्नेः) अग्नि का है (मर्त्तासः) पृथिवी पर निवास करने वाले सभी व्यक्ति (हव्य वाहम्) हव्य का वहन करने वाले और (घृत प्रियम्) घृत जिसको प्रिय है, ऐसे उस (अग्निम्) अग्नि को (इन्धेत) प्रदीप्त करते हैं, अर्थात् अपने जीवन में धारण कर उससे यश तेज ओज रूपी अग्नि को बढ़ाते हैं ।।२०।।

अग्नि का इन्धन करते वे जिससे तेज बढ़े उनका ।
हव्य वहन करने वाला वह प्रिय बनता है सब जन का ।।२०।।

(क्रमशः)

पावमानी

सामर्पण शतपथ धारा

(गतांङ्क से आगे)

अथ द्वितीय काण्डे

तृतीय प्रपाठक—द्वितीयं ब्राह्मणम्
तृतीयाध्याये—चतुर्थं ब्राह्मणम्

"स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।। सचस्वा नः स्वस्तये"—इति (वा० सं० ३-२४) । यथा पिता पुत्राय सूपचरो—नैवैनं केनचन हिनस्ति—एवं नः सूपचर एधि, मैव त्वा केनचन हिंसिष्म-इत्येवैतदाह ॥३०॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥
यजु० अ० ३-२४

हम बालक माँगे सदा नित्य नई सोगात
नित्य पिता हममें रहो रहे प्रेम बरसात ॥

हे पिता । हम इस गार्हपत्य से प्रतिदिन आहवनीय को प्रदीप्त करते हैं । आहवनीय की ज्वाला सदा कोई न कोई नया ही रूप धारण करती है । भला फिर आप से हमें सदा ज्ञान की नई से नई सोगात न मिलेगी । देखो हम रूठ जायेंगे । माना तुम विश्व पति हो पर मेरे घर पर गृहपति भी तो हो ।

जैसे पुत्र को पिता के पास आने में कोई झिझक नहीं होती पिता उसे किसी प्रकार हानि नहीं पहुंचने देता । इसी प्रकार तू हमारे लिये हो और हम भी तुझे तेरे लिये कोई अप्रीति कर कार्य न करें । यह कहता है ॥३०॥

अथ द्विपदाः। "अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः। वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छानक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः॥ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः। स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्याणो अघायतः समस्मात्"—इति (वा० सं० ३।२५।२६) ॥३१॥

अव द्विपदा अर्थात् दो पदे आरम्भ होते हैं। मन्त्र इस प्रकार है।

अग्ने त्वन्नो अन्तम उतत्राता शिवो भवा वरूथ्यः
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छानक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः॥
तंत्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः
सनो बोधि श्रुधि हवमरुष्यमाणो अघायतः समस्मात् ॥य० ३-२६।

हे अग्ने तुझ से बढ़कर हमारा नजदीकी कौन है। तू ही हमारे समीपतम है। सुना है तू इतना मिलसार है कि सब में हिल मिल के बस जाता है। यही वसुपने की तेरी ख्याति है। तू फिर हमारा भी वरुथ्य टोलीदार) बन जा। इस प्रकार हमारा त्राता बन, शिव बन, हममें अच्छी प्रकार बस जा, और हमें वह धन दे, जो उजले से उजला हो (आगम, स्थिति, व्यय, सब में निष्कलंक हो)। मैं अकेला तो तुझे नहीं बुला रहा हूँ। हम सब मित्र मिलकर तुझे सबसे बढ़िया पवित्रतम खिलाड़ी (शोचिष्ठ दिवु क्रीड़ा) समझकर सुम्न के लिए, सच्चे विनोदानन्द के लिये, बुला रहे हैं। हम सब सखाओं के कल्याण के लिये तू भी बड़ा सखा बनकर आ जा। हमें भली प्रकार जान ले परख ले, तब हमारी पुकार सुन। हम तेरी संगति के भिखारी हैं। तू हमारा सखा बन जा और समस्त पापियों को टोली से हमें बचा ॥३१॥

यद्वा आहवनीयमुपतिष्ठते-पशूंस्तद्याचते। तस्मात्तमुच्चावचैश्छन्दोभिरुपतिष्ठते उच्चावचा इव हि पशवः। अथ यद् गार्हपत्यं-पुरुषांस्तद्याचते। तद् गायत्रं प्रथमं त्रिचम्। गायत्रं वा अग्नेश्छन्दः। स्वेनैवैनमेतच्छन्दसोपपरैति ॥३२॥

आहवनीय के उपस्थान में मनुष्य चाहता है कि मेरी सब इन्द्रियें सब निसर्ग बुद्धियें संकल्पाग्नि के इस प्रकार वश में होकर चलें जिस प्रकार पशु मनुष्य के इशारे पर चलते हैं। सो आहवनीय में वह पशु मांगता है। इसलिये छोटे बड़े छन्दों से उपस्थान करता है। पशु भी तो छोटे बड़े हैं। अब जो गार्हपत्य का उपस्थान करता है, यहाँ वह पुरुष माँगता है। मुझे इतिहास मिले महापुरुषों के जीवन चरित्र मिलें। सबसे पुराने पुराण पुरुष का सत्संग मिले सख्य मिले उनमें सत्संग के लिए आवेश मिले। इसमें प्रथम तीन छन्द गायत्री हैं। सो अग्नि का छन्द है। सो अग्नि के छन्द से

अग्नि का उपस्थान करता है। भाव यह कि अग्नि की मस्ती से ही वीर रस उत्पन्न होता है। जिसकी मस्ती में फिर गान होता है ॥३२॥

अथ द्विपदाः। पुरुषच्छन्दसं वै द्विपदाः। द्विपाद्वा अयं पुरुषः। पुरुषानेवैतद्याचते। पुरुषान् हि याचते-तस्माद् द्विपदाः। पशुमान् हवै पुरुषवान् भवति—य एवं विद्वान् उपतिष्ठते ॥३३॥

अब द्विपदा छन्द हैं। यह पुरुष का छन्द है, क्योंकि पुरुष भी दोपाया है। इसलिये अब पुरुष माँगता है क्योंकि पुरुष माँगता है। इसलिये द्विपदा है। जो इस मर्म को इस प्रकार जानकर उपस्थान करता है वह पशु मान् (जितेन्द्रिय) तथा पुरुषवान् (सत्संग लाभ वाला) दोनों हो जाता है ॥३३॥

अथ गामभ्यैति। "इड एह्यदित एहि"—इति (वा० सं० ३।२७)। इडा हि गौः, अदितिर्हि गौ—तामभिमृशति। "काम्या एत"—इति (वा० सं० ३।२७)। मनुष्याणां ह्येतासु कामाः प्रविष्टाः। तस्मादाह काम्या एतेति। "मयि वः कामधरणं भूयात्"—इति (वा० सं० ३।२७)। अहं वः प्रियो भूयासमित्येवैतदाह ॥३४॥

फिर गौ के पास जाता है। मन्त्र बोलता है :

इड एह्यदित एहि काम्याएत। मयि वः कामधरणम् भूयात् ॥य० ३-२७

हे गोमाता तू तो हमें दूध देती ही है। परन्तु हम इस पूर्व पुरुषों के पौरुष के स्मारक गार्हपत्याग्नि को देखकर भगवान् से यह वर माँगते हैं कि हमें राजनैतिक क्षेत्र की गौवों का भी अधिपत्य प्रदान करे। हे प्रभो। ऐसी कृपा कीजिये कि पृथिवी और राजनीति दोनों मेरे इस प्रकार से वश में हो कि मैं जैसे इस गाय को पुकारता हूँ तो यह पूँछ उठाये प्रेम से मेरे पास दौड़ी चली आती है। ऐसे ही पृथिवी माता से कहूँ कि अदित एहि और वह भी रंभाती हुई मेरे पीछे चली आवे। फिर तो सब ही काम्य पदार्थ बछड़ों की तरह मेरे पीछे चल आवेंगे। हे इडे। हे अदिते। हे काम्या। प्रभु की ऐसी कृपा हो कि मुझे तुम पर काम धरण प्राप्त हो जावे अर्थात् जब चाहूँ बुला लूँ, ऐसा वशीकार हो जावे ॥३४॥

अथान्तरेणाहवनीयं च गार्हपत्यं च प्राङ् तिष्ठन्नग्निमीक्षमाणो जपति। "सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ॥ कक्षीवन्तं य औशिजः"—(वा० सं० ३।२८।) "यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः। स नः सिषक्तु यस्तुरः"—(वा० सं० ३।२९) "मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य रक्षा णो ब्रह्मणस्पते"—इति (वा० सं० ३।३०) ॥३५॥

फिर आहवनीय तथा गार्हपत्य के बीच पूर्वाभिमुख खड़ा होकर जपता है ।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षिवन्तंयः औशिजः ॥ य० ३-२८

यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ य० ३-२९

मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षाणो ब्रह्मणस्पते । य० ३-३०

इन मन्त्रों को समझने के पूर्व ब्रह्मणस्पति का अर्थ समझना पड़ेगा । वेद में इन्द्र तथा ब्रह्मणस्पति दो शासक बताये गये हैं । ब्रह्मणस्पति का वर्णन ऋग्वेद द्वितीय मण्डल में बड़ा स्पष्ट है । जो मन्त्र गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे । अश्व मेध प्रकरण में आये हैं वही यहाँ ब्रह्मणस्पति के सम्बन्ध में आये हैं । इन्द्र वज्र से शासन करता है ब्रह्मणस्पति ब्रह्मदण्ड के बल से अर्थात् प्रेम से अथवा सत्याग्रहादि प्रेममय दण्ड देकर ब्रह्मणस्पति का स्वरूप दिखाने के लिये एक ही मन्त्र पर्याप्त होगा ।

विश्वेभ्यो हित्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टा जगत् साम्नः साम्नः कवि सक्रंणाचिद् ऋणया द्रुहो हन्ता महे ऋतस्य धर्तरि ॥ ऋ० म० २ सं० २३ म० १७॥

हे ब्रह्मणस्पते त्वष्टा ने जब तुझे बताया तब वह स्वयं तो कवि बना और ब्रह्माण्ड में से जहाँ-जहाँ संगीत था उसका सार इकट्टा करके तुझे बनाया, जिस प्रकार संगीत के वाद्य यन्त्र मार खाकर भी मधुर स्वर' लहरी देते हैं । इस प्रकार तू भी अपने द्रोहियों से मीठी लड़ाई लड़ता है । वह तुझ से ज्ञान पा पाकर सिर पर धरते जाते हैं और तू भी अपने ज्ञान भण्डार खोलकर उनके सिर पर ऋण चढ़ाता जाता है । इस प्रकार ऋण के द्वारा तू अपने द्रोहियों के सिर पर ज्ञान के ऋण का पहाड़ चिनकर ऋण के बोझ से दबाकर उन्हें मार देता है अर्थात् वे तेरे द्रोही नहीं रहते । भक्त बन जाते हैं । जिस प्रकार क्षत्रिय राज्य का अधिपति इन्द्र है उसी प्रकार ब्रह्म राज्य का अधिपति ब्रह्मणस्पति है । जिस प्रकार इन्द्र पटवारियों तथा थानेदारों द्वारा राज्य करता है । ब्रह्मणस्पति कुल पुरोहितों, प्रचारकों तथा अध्यापकों द्वारा लोगों की मति को सन्मार्ग में चलाता है । उसे राज्य की ओर से कुछ अधिकार भी प्राप्त होते हैं, किन्तु वह यथा शक्ति ब्रह्मवर्चस से ही राज्य करता है । इसीलिये कहा कि आहवनीय

दयौ : है, जिसे इन्द्र भी कह आये हैं (२-३-२-१) गार्हपत्य पृथिवी है जिसे यम भी कह आये हैं। इन दोनों क्षत्रियों के बीच में जो स्थान है वह अन्तरिक्ष है। यह ब्रह्मणस्पति अथवा बृहस्पति की दिशा है, यहाँ खड़ा होकर बृहस्पति का उपस्थान करता है। इसीलिये यहाँ बार्हस्पत्य मन्त्र जपता है।

इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार हुआ। हे ब्रह्मणस्पते सम्पूर्ण ब्रह्म विद्या के अधीश्वर परमात्मन् (ब्रह्म अथवा ब्रह्मणस्पति प्रतिनिधिभूत विद्वान् कुल पुरोहित) यह जो अपने जीवन संकल्पानुसार संसार के पदार्थों में से शक्ति का सवन करने वाला यजमान आपकी शरण में खड़ा है। यह अपने विद्याध्ययनादि कर्मों के लिये कमर कसकर कक्षीवान् बनकर खड़ा है। तुझ से सच्चा प्यार करने वाले प्रभु भक्तों को ही यह पिता मानता है। हे प्रभो। अब तक तो यह प्रेम भरे उशिक् लोग इसे अपना बच्चा जानकर उँगुलि पकड़कर चलाते आये हैं, परन्तु भला मैं कब तक इस प्रकार इन्हें दुख दूँगा। अब तो मुझे स्वरण अर्थात् स्वावलम्बी स्वयं स्वर भरकर दूसरों को सुनाने वाला बना दीजिये।१॥

वह ब्रह्मणस्पति (परमात्मा का पुरोहित) जो सच्चे ज्ञान धन से सम्पन्न है जो न केवल धन देता है किन्तु हमारे रोग भी नाश करता है हमें सांसारिक वसु अर्थात् ऐश्वर्य भी प्राप्त करवाता है परन्तु सदुपदेश द्वारा उस धन को हमारे लिये शोषक के स्थान पर पोषक बनाता है वह पुष्टिवर्धन प्रभु हम से मिला रहे और हमें मिलाता रहे। वह जो तुरन्त फल देने वाला है ॥२॥

हे प्रभो हमारे यह शंस यह मंगल गान तो कभी नष्ट न हों हाँ वह कन्जूस लोग जो हमें भी दान देने से रोकते हैं उनकी धूर्त्तता भरी चालें हम से दूर रहें। हे ब्रह्मणस्पते (परमात्मन् विद्वन् वा) हमारी इस प्रकार रक्षा कीजिये ॥:६॥

"महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्य्यम्णः। दुराधर्षं वरुणस्य"—(वा० सं० ३।३१) "न हि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु। ईशे रिपुरघशंसः"—(वा० सं० ३।३२) "ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे···मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम्" इति (वा० सं० ३।३३) तत्रास्ति नाध्वसु वारणेष्विति। एते ह वा अध्वानो वारणाः—य इमेऽन्तरेण द्यावापृथिवी। एतान् ह्येतदुपतिष्ठते। तस्मादाह नाध्वसु वारणेष्विति ॥३७॥

अब राज्य के जिन क्षत्रिय विभागों से यज्ञ रक्षा होती है उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशनार्थ उनका स्मरण करता है। जिससे उचित राजभक्ति अथवा राष्ट्र भक्ति सदा हर घर में बनी रहे। मन्त्र पढ़ता है।

(१) महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ य० ३-३१

(२) नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥ य० ३-३२

(३) ते हि पुत्रासो अदितेः प्रजीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ य० ३-३३ ।

अदिति के प्रकृति माता के तीन पुत्र हैं । मित्र-प्राण, सूर्य तथा वरुणवायु इनमें जो मनुष्य को जीवन शक्ति देता है वह प्राण मित्र है जिसे रसायन शाला में ऑक्सीजन कहते हैं । सूर्य आकर्षणादि द्वारा जिसको जितनी शक्ति तथा उष्णता प्रकाशादि मिलने चाहिये वह सूर्य का अर्यमा (**अर्य स्वामिनम् मिमीते इति अर्यमाः**) रूप है क्योंकि वह यह जानता है कि कौन किसका कितने अंश तक स्वामी अथवा भागी है । सो इस रूप से सूर्य अर्यमा कहलाता है । वरुण वायु जिसे वर्तमान रसायन शास्त्र की भाषा में हाइड्रोजन कहते हैं पदार्थों में कौन कहाँ कितना छिपा है यह पता लगाने में परम सहायक है । यह तीनों हमें तीन गुणों की ज्योति सदा हमें दे रहे हैं । हम मर्त्य लोगों को जीवन यात्रा का मार्ग दिखाने के लिये वह ज्योति देते हैं । उनकी इस ज्योति को पाकर हमने राष्ट्र में (प्रचार विभाग) अर्यमा विभाग (दीवानी अदालत) वरुण विभाग (पोलिस) बनाये हैं । तीनों का तेज दुरधार्ष है । द्युक्ष है अर्थात् उसमें सदा प्रकार बसता है । यह तीनों का दुराधर्ष महान् परम रक्षक तेज़ हमारा सदा रक्षक हो ।

जिनके यह रक्षक है उनके न तो घर में उपद्रव कर सकता है । न मार्ग में चलते समय यात्रा निवारक और व्याघ्रादि से उन्हें भय है । उन पर बुरा चाहने वालों का (अघशंसो का) कोई वश नहीं चलता । हाँ उनकी कृपा से मैं इन सब स्थानों में प्रभुत्व रखता हूँ । सो द्यावा पृथिवी के बीच जितने सन्मार्ग निवारक विघ्न हैं, सो इन देवों के उपस्थान से वे दूर होते हैं, यह कहता है ।

भाव यह कि घर में भी परस्पर मैत्री सबके अधिकारों की यथोचित मर्यादा तथा चोरादि की चौकसी रखने वालों के घर पर बुरा चाहने वालों का कोई बस नहीं चलता ॥३७॥

अथैन्द्री । इन्द्रो वै यज्ञस्य देवता । सेन्द्रमेवैतदग्न्युपस्थानं कुरुते । "कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे"--इति (वा० स० ३।३४) यजमानो वै दाश्वान्न यजमानाय दुह्यसि-इत्येवैतदाह । "उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते"—इति (वा० सं० ३।३४) । भूयोभूय एव न इदं पुष्टं कुरु-इत्येवैतदाह ॥३८॥

अब इन्द्र की ऋचा पढ़ता है। इन्द्र यज्ञ का देवता है। इस प्रकार जब उपस्थान में सब देवों का स्मरण हो रहा है तो इन्द्र के स्मरण बिना वह अधूरा हो जाता। इसलिये इसे सेन्द्र (इन्द्र सहित) करता है। मन्त्र पढ़ता है —

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नुते दानं देवस्य पृच्यते ॥ य० ३-३७

हे प्रभो। हे इन्द्र। तू अपने भक्तों का स्तरीः आच्छादक शरण देने वाला कब नहीं होता, जो तुझे देता है, तू उससे सदा मिला हुआ है। हाँ इतना भेद अवश्य है कि जो सच्चे हृदय से तेरी आज्ञा पालन करता हैं तेरे निमित्त तेरी प्रजा की सेवा करता हैं। तेरा दान उससे अधिक शीघ्र तथा अधिक मात्रा में उस देने वाले को मिलता है। यह गुण हमें भी सिखा दे। इसलिए हम उपस्थित हुए हैं।

भाव यह कि गृहपतियों को परमात्मा का इन्द्र तथा मघवान् रूप भी धारण करना चाहिए। ऐश्वर्यवान् तथा दाता दोनों बनना चाहिए, यही उपस्थान का लाभ है ॥३८॥

अथ सावित्री। सविता वै देवाना प्रसविता। ततो हास्मा एते सवितृ-प्रसूता एव सर्वे कामाः समृध्यन्ते। "तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्"—इति (वा० सं० ३।३५) ॥३९॥

मित्र वरुण अर्यमा अग्नि ब्रह्मणस्पति इन्द्र सब देव किसी नियम पर चल रहे हैं। यदि नियम न हो तो फिर वह पालन किस का करें। सो भगवान् के इस नियम निर्माता रूप को बताने वाली सावित्री का अब वर्णन है। इस नियम निर्माता रूप का नाम सविता है। सो इसी का सावित्री द्वारा उपस्थान है। और सब देवता बुद्धि पूर्वक बने हुये राज नियमों का बुद्धिपूर्वक पालन करते हैं। यह वह देवता है जो उन नियमों को बनाता है। इसलिए और सब देवता कर्मों के प्रेरक हैं। आचरण करवाते हैं। यह बुद्धियों का प्रेरक है। अन्य देवता आचरक हैं। यह विचारक है यही इसका अन्य देवताओं से भेद है। इसीलिए कहा कि **तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ य० ३-३५ ॥**

सविता देवों को आज्ञा देने वाला है। इसलिए यजमान की जितनी कामना पूरी होती है वह सविता की आज्ञा से पूरी होती है। इसलिए कहा कि हम देव सविता के उस वरणीय तेज को सदा ध्यान करते रहें जो हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करे।

भाव यह कि गृहपति को घर में राजा को राज्य में पहिले नियम बनाकर फिर उनका ठीक ऐसे पालन करना चाहिये जैसे सविता रूप में अपने बनाये नियमों को भगवान् इन्द्र वरुणादि रूप में यथार्थ रूप से पालन करता है ।।३९।।

अथाग्नेयी । तदग्नय एवैतदात्मानमन्ततः परिददाति गुप्त्यै । "परि ते दू डभो रथोऽस्मा ।। अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः" – इति (वा० सं० ३।३६) । यजमाना वै दाश्वांस । यो ह वा अस्यानाधृष्यतमो रथ :– तेनैष यजमानानभिरक्षति । स यस्तेऽनाधृष्यतमो रथो येन यजमानानभिरक्षसि, तेन नः सर्वतोऽभिगोपाय-इत्येवैतदाह । त्रिरेतज्जपति ।।४०।।

अब अग्नि देवता के नाम की ऋचा आती है । सो अन्त में अपने आपको अग्नि की रक्षा में समर्पण करता है । मन्त्र इस प्रकार है—

परि ते दूडभोरथो स्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ।। यजु० ३-३६ ।।

हे अग्ने । आपने विज्ञान रूपी एक रथ बनाया है जो कभी धोखा नहीं देता, कभी धोखा नहीं खाता । तू नाना प्रकार की कर्माहुति देने वाले मन्त्रों की जिससे रक्षा करता है । हे भगवन् यह रथ हमारी भी रक्षा करे। यह आहवनीय गार्हपत्यादि उसी रथ के अंगों के सूचक हैं । यह रथ हमारी चारों ओर से रक्षा करें । इस मन्त्र को तीन बार जपता है ।।४०।।

अथ पुत्रस्य नाम गृह्णति । 'इदं मेऽयं वीर्यं पुत्रोऽनुसन्तनवद्' इति । यदि पुत्रो न स्याद् अप्यात्मन एव नाम गृह्णीयात् ।।४१।। इति बृहदुपस्थानम् ।

'इति तृतीय प्रपाठके द्वितीयं ब्राह्मणम्'

फिर पुत्र का नाम लेकर कहता है कि इदं में वीर्यं पुत्रो नुसंतनवत् यदि पुत्र न हो, अपना ही नाम ले ले । भाव यह कि यह वर्ण धर्म द्वारा अविच्छिन्न रहनी चाहिए ।।४१।।

शतपथ ब्राह्मणे द्वितीय काण्डे तृतीय प्रपाठके द्वितीयं ब्राह्मणम् ।
इति द्वितीय काण्डे तृतीयोऽध्यायस्समाप्तः ।।
अथ द्वितीय काण्डे चतुर्थाध्याये प्रथमं ब्राह्मणम् ।

अथ क्षुल्लकोपस्थानमासुरिदृष्टम्

अथ हुतेऽग्निहोत्र उपतिष्ठते—"भूर्भुव : स्वः"—(वा० सं ३।३७) इति । तत्सत्येनैवैतद्वाचं समर्धयति । यदाहभूर्भुवः स्वरिति । तया समृद्ध-

याऽऽशिषमाशास्ते । "सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम्"—इति (वा० सं० ३।३७) । तत्प्रजामाशास्ते । "सुवीरो वीरैः"—इति (वा० सं० ३।३७) । तद्वीराना-शास्ते । "सुपोषः पोषैः"—इति (वा० सं० ३।३७) । तत्पुष्टिमा-शास्ते ॥१॥

एक उपस्थान का वर्णन हो चुका, जिसका नाम बृहदुपस्थान है। अब दूसरा उपस्थान आरम्भ होता है। इसका नाम क्षुल्लकोपस्थान है इसे वर्तमान युग की भाषा में उपस्थान का जवी संस्करण कह सकते हैं। पहिला उपस्थान अग्निहोत्र का अंग है। यह अग्निहोत्र के विषय में है। मनुष्य प्रवास में हो तब भी इसके द्वारा उसका अग्नि होत्र के साथ सम्बन्ध बना रहता है। सो अब उसका वर्णन करते हैं।

अग्निहोत्र हवन समाप्त होने पर उपस्थान करता है।

ओम् भूर्भुवः स्वः सुप्रजा प्रजाभिः स्यां सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजाम्मे वाहि शंस्य पशून्मे पाहि अथर्य पितुम्म पाहि ॥ य० अ० ३-३७ ।

भूर्भुवः स्वः इन तीन व्याहृतियों में ज्ञान इच्छा अनुभूति के सत्यं शिवं सुन्दरम् तीनों रूप आ जाते हैं। यह सर्वांग सम्पन्न सत्य है। सो उपस्थान की वाणी को सत्य से समृद्ध करता है। सत्य समृद्ध वाणी से आशीर्वाद माँगता है। हे प्रभुः हे भुवः हे स्वः मैं प्रजा की दृष्टि से उत्तम प्रजा वाला हो जाऊँ। प्रजा में भी ब्राह्मण वशिष्ठन्यायेन वीरो से सुवीर हो जाऊँ। सुपुष्टियों से सुपुष्टि वाला हो जाऊँ। १।

यद्वा अदो दीर्घमग्न्युपस्थानम्—आशीरेव सा। आशीरियम्। तदेतावतैवैतत्सर्वमाप्नोति। तस्मादेतेनैवोपतिष्ठेत। एतेन न्वेव वयमुप-चराम इति ह स्माहासुरिः ॥२॥

यह क्षुल्लक अर्थात् छोटा उपस्थान है। वह तो जो दीर्घ उपस्थान पहिले वर्णन कर आये हैं वह भी आशीर्वाद ही है। यह भी आशीर्वाद प्रार्थना है। सो समझदार के लिये इतने में उस पहिले सारे उपस्थान का आशय आ गया अर्थात् जो प्रतिदिन बड़ा उपस्थान करता है उसे समय पड़ने पर छोटा उपस्थान भी बड़े का काम दे देता है। क्योंकि इन थोड़े शब्दों में अभ्यास द्वारा वह सारा भाव भर जाता है, जिसे गुण याद हो जावे। उसके सामने बार बार अदेङ् कहने की आवश्यकता नहीं रहती। इसीलिए आसुरि आचार्य कहते थे कि मैं तो यह छोटा उपस्थान ही करता हूं, मैं तो इसी से सब काम पूरा कर लेता हूं ॥२॥

प्रवत्स्यदुपस्थानम् ।

अथ प्रवत्स्यन् गार्हपत्यमेवाग्र उपतिष्ठते-अथाहवनीयम् ॥३॥

जब कभी उपवास पर जाने लगे तो पहिले गार्हपत्य का उपस्थान करता है, फिर आहवनीय का। क्योंकि कुल गौरव की चिनगारी में से वर्तमान संकल्प की अग्नि आती है। इसलिये वह वृद्धतर है ॥३॥

स गार्हपत्यमुपतिष्ठते। "नर्यं प्रजां मे पाहि"—इति (वा० सं० ३।३७)। प्रजाया हैष ईष्टे। तत्प्रजामेवास्मा एतत् परिददाति गुप्त्यै ॥४॥

वह गार्हपत्य का उपस्थान करते समय मन्त्र पढ़ता है। **नर्यं प्रजां में पाहि**। हे नरो का कल्याण करने वाले मेरी प्रजा की रक्षा कीजिये। ये आप पुरुषोत्तम हैं। आपकी तथा पूर्वज पुरुषोत्तमों की संगति के लिए ही गार्हपत्य अग्नि मैंने घर में जलाया है। यह सत्संग मेरा कभी न छूटे। हे पुरुषोत्तम कम से कम आपका संग तो न छूटे। इस प्रकार अपनी प्रजा को प्रजा के अधीश्वर के लिए रक्षार्थ अर्पण करके प्रवास को जाता है ॥४॥

अथाहवनीयमुपतिष्ठते—"शंस्य पशून्मे पाहि"—इति (वा० सं० ३।३७) पशूनां हैष ईष्टे। तत् पशूनेवास्मा एतत् परिददाति गुप्त्यै ॥५॥

फिर आवहनीय का उपस्थान करता है। **शंस्य पशून्मे पाहि**। हे परम प्रशंसनीय यह इन्द्रिय तथा निसर्गज बुद्धियें, मेरे पशु हैं? परन्तु जब मैं तेरो प्रशंसा छोड़कर इन पशुओं के पीछे चल पड़ता हूँ, तो यह न जाने मुझे कहाँ-कहाँ घसीटते फिरते हैं। यह आहवनीयाग्नि मेरे जीवन के ध्येय का प्रतीक है। यही मेरा आपसे सम्बन्ध जोड़ता है, जब तब मैं इसकी तथा इसके द्वारा आपकी प्रशंसा करता हूँ, तब तक यह पशु वश में रहते हैं। सो ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मैं आपके तथा अपने आहवनीय ध्येय की प्रशंसा न भूलूँ। इसी में मेरा कल्याण है। इसी में इन पशुओं का। सो हे शंस्य मेरे पशुओं की रक्षा कीजिये। इस प्रकार पशुपति भगवान् को अपने पशु रक्षा के लिये समर्पण करता है ॥५॥

अथ प्र वा व्रजति, प्र वा धावयति। स यत्र वेलां मन्यते तत्स्यत्वा वाचं विसृजते। अथ प्रोष्य परेक्ष्य यत्र वेलां मन्यते तद्वाचं यच्छति। स यद्यपि राजान्तरेण स्यात्—नैव तमुपेयात् ॥६॥

मनुष्य काम काज के लिये घर से बाहर भी जाता है। प्रयोजन होने पर सवारी भी दौड़ाता है। सो जहाँ समझें कि ग्राम की सीमा आ गई अथवा यात्रा में समझे की अग्नि होत्र वेला आ गई वहाँ तब पहुँचकर मौन विसर्जन कर दे। इससे स्पष्ट है कि उपस्थान के पश्चात् मौन धारण कर लेना चाहिये। इसी प्रकार प्रवास पूरा करके लौटते समय जहाँ ग्राम सीमा समझें तथा अग्निहोत्र वेला समझें वहाँ मौन धारण कर ले। इस मौन के समय यदि राजा भी सामने पड़े तो उसके पास न जावे (क्योंकि

जब स्वामियों के स्वामी का उपस्थान समय हो उस समय और किसी का उपस्थान कैसे हो) ।।६।।

स आहवनीयमेवाग्र उपतिष्ठते—अथ गार्हपत्यम् । गृहा वै गार्हपत्यः, गृहा वै प्रतिष्ठा । तद् गृहेष्वेवैतत्प्रतिष्ठायां प्रतितिष्ठति ।।७।।

इस समय पहिले आहवनीय उपस्थान करना चाहिए फिर गार्हपत्य का आहवनीय मनुष्य की प्रतिष्ठा है और आहवनीयान्वित मनुष्य घर की प्रतिष्ठा है । गार्हपत्य तो गृहाग्नि है सो यह घर में घर की प्रतिष्ठा को स्थापित करता है ।।७।।

स आहवनीयमुपतिष्ठते—"आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् । अग्ने सम्राडभि धुम्नमभि सह आयच्छस्व"—इति (वा० सं० ३।३८) । अथोपविश्य तृणान्यलुम्पति ।।८।

आहवनीय के उपस्थान के समय मन्त्र पढ़ता है ?

आगन्म विश्ववेदमस्मभ्यं वसुवित्तमम् ।

अग्ने सम्राडभिद्युम्नमभि सह आयच्छस्व ।। य० ३-३८ ।।

यह मन्त्र पढ़कर आहवनीय के पास बैठकर तिनकों का अपलुम्पन करता है । अपलुम्पन का अर्थ कई लोगों ने तृण प्रक्षेप किया है । कई लोगों ने तृणापनयन । हमारी दृष्टि में अप उपसर्ग को देखकर अपनयन ही अर्थ ठीक दीखता है । फिर तृण प्रक्षेप भी तो तृणापनयन का सर्वश्रेष्ठ प्रकार है । भाव यह कि प्रवास में ध्येय साधन में जो त्रुटि आ गई हो उन्हें भी भस्म करता हूं । और यत्न करूँगा कि प्रवास में जो इधर-उधर से ज्ञान तृण प्राप्त हुये हैं वे भी अग्निलोप के स्थान में अग्नि समिन्धन का ही कार्य करें । वे स्वयम् लुप्त हो जावें तथा अग्नि चमके । इसीलिए कहा तृणानि अपलुम्पति ।

इससे पहिले जो मन्त्र पढ़ा जाता है उसका अर्थ इस प्रकार है :

हे प्रभो तू सर्वज्ञ है तथा सर्व सुखों का दाता है । वसु कहाँ है तथा कहाँ से किस प्रकार प्राप्त होते हैं ? इसका मर्म तू ही सबसे अधिक जानता है । हम आज तेरी शरण में आये हैं । हे सम्राट् । तुम तो विश्ववेदम् हो वसु वित्तम हो । परन्तु इस यश के भण्डार में से कुछ हम भक्तों को भी तो मिल जाये । आपको तो सब कुछ प्राप्त है । पर हमें तो प्रयत्न से प्राप्त करना है । इसलिये हम और क्या मांगें । नाना प्रकार के विघ्नों को सहन करके फिर भो अपना ध्येय न छोड़ने वाला सहः हमें प्रदान कीजिये । (मैं प्रवास में गया था यह भी एक विघ्न था । उसे पार करके फिर आपकी शरण में आया हूं और सहः दीजिये जिससे विघ्नों को सहन कर सकूँ

(आयच्छस्व, आयाम कर, विस्तार कर, द्युन तथा सहः का, यश तथा साहस का) ।।८।।

अथ गार्हपत्यमुपतिष्ठते । 'अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः । अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व" इति (वा० सं० ३।३९) । अथोपविश्य तृणान्यपलुम्पति । एतन्नु जपेनैतेन न्वेव भूयिष्ठा इवोपतिष्ठन्ते ।।९।।

फिर गार्हपत्य का उपस्थान करता है । उस समय मन्त्र पढ़ता है—

अयमग्नि र्गृहपति गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः ।
अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ।। य० ३-३९

हे प्रभो यह गार्हपत्याग्नि हमने यहाँ जलाया है । इसलिये जलाया है जिस कुल मर्यादा का प्रतीक यह अग्नि है, उसे पालन करके मैं भी सच्चा गृहपति बन जाऊँ । में गृहपति हूं यह मेरा मार्ग दर्शक है । यही मेरा इसका सम्बन्ध है । जब मैं कुल गौरव को ठीक पालन करता हूं तो यह हमारे भावी कुल को, हमारी प्रजा को श्रेष्ठ से श्रेष्ठ बसने के साधन देता है । इसीलिये यह वसु वित्तम है । परन्तु हे सब गृहपतियों के परम गृहपते । यह घर वास्तव में तो आपका है । मैं सच्चा यश और धन अभिमुख रख के चला हूं । रात दिन इसके लिए उद्योग करूँगा, परन्तु मार्ग में जो विघ्न आयेंगे उनको सहन करने की शक्ति तो आप ही देंगे । बस यह मैं आपसे माँगता हूं । इस शक्ति का विस्तार कीजिये । फिर बैठकर तृणानि लुम्पति अर्थात् तृणापनयन अथवा तृण प्रक्षेप करता है । बहुत से तो इस जप से ही उपस्थान करते हैं ।।९।।

स वै खलु तूष्णीमेवोपतिष्ठेत । इदं वै यस्मिन् वसति ब्राह्मणो वा राजा वा श्रेयान्-मनुष्यः अन्वेव-तमेव नार्हति वक्तुम् 'इदं मे त्वं गोपय, प्राहं वत्स्यामि' इति । अथास्मिन्नेते श्रेयांसो वसंति-देवा अग्नय । क उ तानर्हति वक्तुम् 'इदं मे यूयं गोपायत प्राहं वत्स्यामि' इति ।।१०।।

सो उपस्थान चुपचाप ही करे । जिस किसी के यहाँ श्रेष्ठ व्यक्ति चाहे वह ब्राह्मण हो या राजा आकर अतिथि बनकर ठहरा हो तो उससे भी यह कहना शोभा नहीं देता । मैं घर से बाहर जा रहा हूं । जरा मेरे घर की रखवाली करना । सो यहाँ तो परम श्रेष्ठ अग्नि अतिथि बनकर बसते हैं । उनसे कौन यह कहने का अधिकार रखता है कि मैं बाहर जाऊँगा तुम मेरी रखवाली करते रहना । भाव यह कि यदि मनुष्य स्वयं चिन्तन के लिए मनः शुद्धि के लिए उपस्थान करता है वह तो ठीक है ।

परन्तु यह स्वयम् आलसी बनकर अग्नि आदि देवों से काम लेना मूर्खता है ॥१०॥

मनो ह वै देवा मनुष्यस्याजानन्ति । स वेद गार्हपत्यः—'परिदां मेदमुपागाद्' इति । तूष्णीमेवा-हवनीयमुपतिष्ठते । स वेदाहवनीयः—'परिदां मेदमुपागाद्' इति ॥११॥

देव लोक मनुष्य के म । को खूब जानते हैं । सो गार्हपत्य को भी पता है कि इसने अपने आपको मेरे अर्पण किया है । चुपचाप ही आहवनीय का भी उपस्थान करता है वह भी जानता है कि इसने अपने आपको मेरे अर्पण किया है ।

भाव यह कि यज्ञ तो मानसिक कर्म है । संकल्प रूप अग्नि तो हृदय में बैठा है । उसे चिल्लाकर क्या सुनाना, उसे तो चुपचाप अन्तर्मु ख होकर सुनाने में भला है । स्तुति अथवा गुण वर्णन तो संसार की ज्ञान-वृद्धि के लिए होता है । वहाँ बोलना सार्थक है । परन्तु उपस्थान में तो मन को सुनाना है । यहाँ बोलने का क्या लाभ । मन तो स्वयम् जानता है कि मैं कुल गौरव तथा ध्येय पूर्ति के लिये समर्पित हूँ ॥११॥

अथ प्र वा व्रजति, प्र वा धावयति । स यत्र वेलां मन्यते तत् स्यत्त्वा वाचं विसृजते । अथ प्रोष्य परेक्ष्य यत्र वेलां मन्यते तद्वाचं यच्छति । स यद्यपि राजान्तरेण स्यात्' नैव तमुपेयात् ॥१२॥

सो प्रवास में पैदल जाता है अथवा सवारी दौड़ाता है । सो जहाँ ठीक सीमा अथवा ठीक समय समझे, वहाँ पहुंचकर वाग्-विसर्जन करता है अर्थात् मौन भंग कर देता है । फिर प्रवास समाप्त करके लौटकर जहाँ ठीक सीमा अथवा ठीक समय समझता है वहाँ मौन धारण कर लेता है । फिर उस समय राजा भी सामने पड़े तो उसके पास उपस्थित न हो ॥१२॥

स आहवनीयमेवाग्र उपतिष्ठते—अथ गार्हपत्यम् । तूष्णीमेवाहवनीय मुपतिष्ठते, तूष्णीमुपविश्य तृणान्यपलुम्पति । तूष्णीमेव गार्हपत्यमुपतिष्ठते, तूष्णीमुपविश्य तृणान्यपलुम्पति ॥१३॥

पहले आहवनीय का उपस्थान करता है फिर गार्हपत्य का चुपचाप ही आहवनीय का उपस्थान करता है । चुपचाप ही गार्हपत्य का चुपचाप ही बैठकर तृण लुम्पन करता है ॥१३॥

अथातो गृहाणामेवोपचारः । एतद्ध वै गृहपतेः प्रोषुषः आगताद् गृहाः सुमत्रस्ता इव भवन्ति किमयमिह वदिष्यति, किं वा करिष्यतीति । स यो ह तत्र किञ्चिद्वदति वा करोति वा-तस्माद् गृहाः प्रत्रसन्ति । तस्ये-

श्वरः कुलं विक्षोब्धोः । अथ यो ह तत्र न वदति, न किं चन करोति—तं गृहा उपसंश्रयन्ते—न वा अयमिहावादीत्, न किञ्चनाकरदिति । स यदि-हापि सुक्रुद्ध इव स्यात्—श्व एव ततस्तत्कुर्याद्—यद् वदिष्यन्वा करिष्यन् वा स्याद् । एष उ गृहाणामुपचारः ॥१४॥

इति अग्नि होत्र विधिः सम्पूर्णः ।

अब घर पहुंचने का शिष्टाचार बताते हैं । जब गृहपति प्रवास से लौटकर आता है तो सब घर के लोग डरे हुये से होते हैं । अब न जाने किसे वह क्या कहेगा । किसको क्या कर बैठेगा । सो जो इस समय आते ही कुछ कह बैठता है अथवा कुछ कर डालता है उससे घर के लोग घबरा-कर दूर भागते हैं । यह व्यवहार उसके कुल को विक्षुब्ध कर डालता है । परन्तु जो न कुछ कहता है न कुछ कर बैठता है, उसके घर के लोग उसकी ओर खिचे से जाते हैं । देखो इसने आते ही न किसी से कुछ कहा न कुछ किया । इसलिये प्रवास से लौटते ही यदि किसी बात पर अति क्रुद्ध भी हो तो उसे कल पर टाल दे । जो कहना व करना हो तो अगले दिन करे, यही घर का शिष्टाचार है ॥१४॥

द्वितीय काण्डे तृतीय प्रपाठके तृतीय ब्राह्मणम्

(क्रमशः)

पावमानी के आजीवन सदस्य

७१—श्री मणिकर्ण सिंह जी जिलेदार
ग्राम/पत्रा० बिजरौल, मेरठ—उ० प्र०

७२—श्री कृष्णपाल सुपुत्र श्री महाराज सिंह
ग्राम/डुंगर पूठ मेरठ—उ० प्र०

७३—श्री विक्रम सिंह जी आर्य
ग्राम/रतौली पत्रा० दबथुआ मेरठ—उ० प्र०

७४—श्री पुष्पेन्द्र जी उर्फ मिट्ठू
भतीजा—श्री हुकुम सिंह जी आर्य
ग्राम/पत्रा० दौराला—मेरठ

७५—श्री जी० नरसिंह आर्य
१८-१-७१७—आर्य सदन
कन्दिकल गेट—
हैदराबाद ५०००५३
आन्ध्र प्रदेश

७६—श्री डब्लु० वासुदेव रेड्डी
६५/सी—पुराना सन्तोष नगर कालोनी
सैदाबाद—हैदराबाद
आन्ध्र प्रदेश

७७ श्री गुण्टी कृष्णा जी
१८-५-२७८/A आर्याबाद
हैदराबाद—५००२५३

७८—श्री हर्षवर्द्धन सुपुत्र—श्री सुरेन्द्र प्रताप सिंह
ग्राम/खटकी पत्रा० परीक्षितगढ़
जनपद मेरठ—२५०४६ उ० प्र०

७९—श्री सञ्जय रञ्जन वोहीदार
द्वारा पी० के वोहीदार (अधिवक्ता)
स्थान/पत्रा० वलांगीर—७६७००१
उड़ीसा

८०—श्री राधे लाल सर्राफ
'साधना' शिवाजी मार्ग—
मेरठ—उ० प्र०

स्वत्वाधिकारी—आचार्य, गुरुकुल प्रभाताश्रम के लिए प्रकाशक मुद्रक—विवेकानन्द सरस्वती द्वारा—आर० डी० गोयल मुद्रणालय से छपवाकर समपर्णानन्द वैदिक शोध संस्थान, भोला मेरठ से प्रकाशित।

ॐ

पावमानीः पुनन्तु नः

पावमानी ही क्यों पढ़ें ?

- ☐ वेदों पर विविध आक्षेपों के समाधान हेतु
- ☐ वेदों में निहित गूढ़ विद्याओं के ज्ञान के लिए
- ☐ भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के मर्म को समझने के लिए
- ☐ वैदिक परम्पराओं एवं मान्यताओं के वैज्ञानिक विवेचन हेतु
- ☐ भारतीय इतिहास एवं खगोल शास्त्र के वास्तविक बोध के लिए
- ☐ दर्शन एवं भाषा विज्ञान के गम्भीर अध्ययन के लिए
- ☐ पुरातन एवं नवीनतम भौतिक विज्ञान की जानकारी के लिए
- ☐ आयुर्विज्ञान एवं धनुर्विज्ञान के स्वाध्याय के लिए
- ☐ स्थापत्य कला एवं ज्योतिष्-विद्या के सतही परिचय के लिए
- ☐ वैदिक आध्यात्मिक, आर्थिक, सामाजिक स्वरूप जानने के लिए
- ☐ सामर्पण शतपथ धारा में अवगाहन के लिए

भक्ति रस एवं राष्ट्रिय विचारधारा की सामग्री
के अद्भुत सङ्कलन के साथ

पढ़िये

प्रत्येक बुद्धिजीवी द्वारा संग्रहणीय
त्रैमासिक शोध पत्रिका

पावमानी

आज ही सम्पर्क करें :—

स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल प्रभात आश्रम, भोला झाल, मेरठ

वार्षिक मूल्य ३०/- **एक प्रति ८/-**

मुद्रक, प्रकाशक स्वामी विवेकानन्द सरस्वती द्वारा आर० डी० गोयल प्रेस, पिलोखड़ी रोड, मेरठ से छपवाकर स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान गुरुकुल प्रभात आश्रम भोला झाल, मेरठ से प्रकाशित ।

सम्पादन—**स्वामी विवेकानन्द**